कहां-क्या

आंखों देखा रूहानी फरिश्ता: दादी निर्मला शांता 3

सत्य किसी की राय पर निर्भर नहीं है 5

पृष्ठ भूमि से नेतृत्व करना 7

जीवन के प्रति खुलें 9

सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति 11

...तो 'वह' भी आपके साथ है 15

जिएं जिंदगी ऐसे.... 8

आवश्यकता से अधिक मोह क्यों? 10

देह दर्शनीय है प्रदर्शनीय नहीं 13

वो ऐसा क्यों है 17

लक्ष्य तथा साधन 19

अपनी आंतरिक शक्ति पहचानें 21

संपादन परामर्श
बी.के. शिवानी, गुड़गांव
डॉ. सतीश गुप्ता,
वरिष्ठ हृदय रोग विशेषज्ञ, आबू
प्रो. ई.वी. स्वामीनाथन
जीवन प्रबंधन विशेषज्ञ, मुंबई
डॉ. गिरीश पटेल,
वरिष्ठ मनोचिकित्सक, मुंबई
कार्यकारी संपादक मंडल
ममता व्यास, भोपाल
बी.के. कोमल, आबू
मंजरी शुक्ला, गोरखपुर
गीत दीक्षित, भोपाल
संपादक*
प्रो. कमल दीक्षित
प्रकाशक
कमल दीक्षित
बी-9, फिरोज गाँधी प्रेस परिसर, इंदौर-3
ई-मेल: 12kk10@gmail.com
(संपादन एवं व्यवस्था संबंधी सभी सहयोग स्वैच्छिक व अवैतनिक)
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के लिए उत्तरदायी।

संपादकीय संपर्क
बी-9, फिरोज गाँधी प्रेस परिसर, इंदौर
मोबा. 9425058483, 9425352312
ई-मेल: rajikhushi9@gmail.com

प्रसार, विज्ञापन एवं व्यवस्था
बी-9 फिरोज गाँधी प्रेस परिसर इंदौर- 452008
ई-मेल: rajikhushi9@gmail.com
12kk10@gmail.com
मो. 08989499923, 09827458656, 09425076379

मुद्रण
स्यूतनिक प्रिंटिंग प्रेस, बी-9 फिरोज गाँधी प्रेस परिसर इंदौर- 452008

वर्ष-2, अंक- 6 अप्रैल 2013

कीमत : एक प्रति 15 रुपए, वार्षिक 150

RNI No. MPHIN/2011/42202

आपने कहा है

माँ को जो मैंने देखा

■ डॉ. रमाशंकर शुक्ल

दो साल पहले की बात है। नवरात्र का आठवां दिन था। मैंने दुर्गा शप्तशती का परायण किया। श्लोकों का उच्चारण करने में कोई असुविधा नहीं होती। पिताजी भले ही कक्षा नौ फेल थे पर अन्यान्य श्लोक उन्हें याद थे। होश संभालने से हमने उन्हें सदैव सुबह-शाम मुखर ध्वनि के साथ श्लोकों का उच्चारण करते दोनों समय सुना है। रोज के वाचन के कारण राम चरित मानस के श्लोकांश, राम रक्षा स्त्रोत, कर्मकांड के तमाम मन्त्र याद हो गए थे। पर दुर्गा शप्तशती को लेकर शुरू से ही असमंजस की स्थिति बनी रही। पंडित जी के अनुसार उच्चारण सही न हुआ तो उल्टा प्रभाव पड़ जाता है। बड़े होने के बाद पाया कि मुझसे गलत उच्चारण नहीं हो रहा। मैंने पूरा परायण किया। लेकिन बार-बार भीतर से सवाल खड़ा हो जाता कि आखिर हम लोग जब दुर्गा को माँ मानते हैं तो उसका स्वरुप क्यों क्रूर रूप में गढ़ते हैं। विकराल रूप, खून पीती हुई माँ, काली के प्रचंड स्वरुप की सराहना और उनके कोप से सर्वनाश की धमकी भरी बातें। मैं सोचता कि दुर्गा के नौ रूपों को अलग-अलग किया तो चलो कोई बात नहीं, पर दूसरे क्रूर रूपों को हम इतना ज्यादा तरजीह क्यों दे रहे हैं। कौन ऐसा इंसान है जो अपनी माँ को मार-काट करते देख खुश होगा। फिर माँ की पूजा में इतनी वर्जनाएं और प्रतिबंध क्यों? माँ के कुपित होने की आशंका क्यों।

मेरे एक मित्र तांत्रिक, ज्योतिषी और कर्मकांडी पंडित हैं। चेहरा देख बहुत कुछ बता डालते हैं। पढ़ाई में मुझसे पांच साल छोटे हैं, पर उनके गुणों के कारण मैं उनका पैर छूता हूँ। मुझे उनकी अचानक याद आई। जा पहुंचा उनके पास। बड़े ही आदर के साथ अपनी शंका उनके समक्ष रखी- 'पंडित जी माँ तो करुणा की मूर्ति होती है। कोई बच्चा जब सबसे निराश हो जाता है माँ को खोजता है। वह कभी नहीं चाहता की उसकी माँ क्रूर, खून से नहाई हुई, निर्वस्त्रा हो। हम तो आँखें बंद करते हैं तो प्रकृति माता की ममतामयी तस्वीर मुस्कुराते हुए खड़ी मिलती है। इसके इस रूप से मन तृप्त हो जाता है। फिर आप लोगों ने माँ के जटिल और क्रूर रूप को ही प्रमुखता क्यों दी?'

पंडित जी मुझे सदैव आदर-सम्मान देते थे। लेकिन उस दिन वे असहज हो गए। पहले तो उन्होंने मना किया कि माँ के बारे में ऐसी बात न करिए, अन्यथा आपका बड़ा नुकसान हो जायेगा। पर मैं काक भुसुंडी की तरह सवाल दर सवाल करता गया। हद तो तब हो गयी जब मैंने 'पशु बलि प्रधान पूजा' पर आपत्ति कर दी। मेरा मानना था कि प्रकृति या दुर्गा, संसार के सभी जीवों की जननी हैं। ऐसे में उन्होंने पशु बलि या किसी भी प्रकार की हिंसा का आदेश क्यों कर दिया।

पंडित जी की सहन सीमा समाप्त हो गयी। उन्होंने कहा, मैंने तो सोचा था कि इस बार नवरात्र में आपके लिए माँ से वाणी की सौगात मांगूंगा, पर आपने तो माँ के अस्तित्व पर ही सवाल खड़ा कर दिया। अब आपका बहुत नुकसान होगा। तीन दिन के भीतर ही आपको भुगतना पड़ेगा। और अब आप यहाँ से जाइये। मैं अपनी माँ का और अधिक अपमान नहीं सह सकता।

मैंने प्रतिवाद किया, पंडित जी माँ को निर्वस्त्र कर क्रूर और कुरूप कर आप लोग अपमान कर रहे हैं कि हम? क्या माँ का स्वरुप ऐसा होना चाहिए कि बेटा उससे लगातार डरता रहे? मेरे ख्याल से तो माँ का रूप और हृदय ऐसा होना चाहिए, जहाँ हर संतान सहजता से उसके पास पहुँच जाय और अपनी पीड़ा बता सके। माँ बेटे की गलतियों को माफ़ कर सके और उसे नेक रास्ते पर चलने के लिए व्यवस्था कर सके।

पंडित जी अब एकदम आग बबूला हो गए। उन्होंने तुरंत वहां से चले जाने को कह दिया। हमने उनके पाँव छुए और चल दिए। हमें 40 किलोमीटर दूर बाइक से जाना था। साथ में भतीजा भी था। वह थोड़ा धर्मभीरु है। उसके चहरे पर भय साफ दिख रहा था। बोला, मेरी बात मानिए, आज की यात्रा स्थगित कर दीजिये। पर मुझ पर पंडित जी की बात का कोई असर न था। सोचा कि मैं गलत हुआ तो माँ कहीं भी दंड दे सकती है। इसके लिए यात्रा क्यों स्थगित करें।

शाम हो चुकी थी। अष्टभुजा की पहाड़ियाँ अँधेरे में स्तूप श्रृंखलाओं की तरह फैली थीं। बाइक एक जगह स्टैंड में खड़ी कर हम घूमने लगे। प्रभु और प्रकृति के लीला विलास को देख मन पुलकित हुआ जा रहा था। देश भर से आये लोग जय माता दी का जयकार लगाते मंदिर की और बढ़े जा रहे थे। हम मंदिर नहीं गए। **शेष पृष्ठ 20 पर...**

आंखों देखा रूहानी फरिश्ता : दादी निर्मला शांता

बी के रामलखन

बात कोलकाता की है। अस्मिता बहन एक चिकित्सक को म्युजियम के चित्रों के माध्यम से ज्ञान समझा रही थी। चिकित्सक बार-बार अपनी घड़ी को देखते हुए चेहरे पर असंतोष भाव से प्रदर्शनी को देख तो रहे थे पर समझ नहीं रहे थे। पूरा म्यूजियम दिखाने के बाद वे उन चिकित्सक को दादी निर्मल शांता से मिलवाने के लिए लाईं। दादी को देखकर और उनकी मोहक मुस्कान तथा वात्सल्य दृष्टि का उनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कह उठे- आप जो समझा रही थी, वह अब समझ में आ गया है। जिस ज्ञान से ऐसे रत्न तैयार हुए हों वह निश्चय ही अलौकिक ही होगा।

अपनी रूहानी दृष्टि, स्नेहिल मुस्कान और कोमल वाणी से परमात्म प्रत्यक्षता करने में समर्थ दादी निर्मल शांता जिन्हें प्यार से सब परदादी कहते रहे हैं, ने 97 वर्ष पूरे करते हुए अपनी व्यक्त देह को 15 मार्च 2013 को छोड़कर अव्यक्त स्थिति प्राप्त कर ली है। वे ऐसा विरल उदाहरण हैं जो प्रजापिता ब्रम्हाकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के प्रभु प्रेरित संस्थापक दादा लेखराज जिन्हें स्थापना के कारण ब्रह्मा बाबा कहते हैं, की सुपुत्री होते हुए भी एक सामान्य साधक की तरह रहीं। उन्होंने अपने कार्य, बोल, व्यवहार तथा नेतृत्व के गुणों से अपने को विकसित किया और रियायत, स्पर्धा या विशेष स्थिति की कभी कोई मांग नहीं की। अध्यात्म के लिए मेरे-तेरे का त्याग उन्होंने कहकर नहीं अपनी जीवनशैली में अपना कर बताया। ईश्वरीय साधना और लोक कल्याण के लिए इन्हीं गुणों और सेवा के सहारे ही अपने को उच्च से उच्चतम स्थितियों तक ले गईं। एक नहीं अनेकों ने उन्हें देखते हुए उनमें ब्रह्मा बाबा की छवि का अनुभव किया था।

24 अक्टूबर 1916 को हैदराबाद(कराची) में दादा लेखराज के यहां जन्मी दादी निर्मल शांता का बचपन का नाम पार्वती था। उन्हें सभी प्यार से पालू कहकर बुलाते थे और यह नाम भी बरसों तक चलता रहा। उनकी बुआ ने उन्हें गोद ले लिया था। दोनों ही परिवार सिंध के धनाढ्य परिवार थे। नौकर-चाकरों की कमी नहीं थी और न किसी वस्तु या साधन की। इसी सब वातावरण में पालू या पार्वती बड़ी हुई। जब वे वयस्क हो रही थीं तभी दादा को ईश्वरीय साक्षात्कार हो रहे थे और उनमें उपरामता तथा ओम मंडली की स्थापना की भूमिका बन रही थी। पार्वती का यथा समय विवाह भी हुआ और वे एक बच्ची की मां भी बनी पर तब तक ईश्वरीय कार्य आरंभ हो चुका था। उसी प्रवाह में वे अपनी छोटी सी बालिका और घर, साधन, वैभव सब कुछ का त्याग कर इस मार्ग पर चलने के लिए आ गई। पिता का आकर्षण तो था पर उससे अधिक उनकों यह मार्ग भा रहा था।

निर्मल शांता नाम भी उनके इस ईश्वरीय ज्ञान को स्वीकार कर समर्पित होने पर मिला था। बचपन में एक गिलास का पानी भी अपने हाथ से न उठाने वाली, रोज दिन में तीन बार ड्रेस बदलने और सभी तरह के जेवर और अलंकरण को पहनने वाली निर्मल शांता को इस मार्ग पर आने के बाद वे सब काम करने पड़े जो उनके नौकर-चाकर किया करते थे। मसलन, बरतन धोना, झाड़ु लगाना, भोजन बनाना, गोबर और कोयले को मिलाकर कंडे बनाना, सब्जी काटना, गाड़ी साफ करना आदि आदि। यह सब करते हुए उन्होंने न तो कभी शिकायत की, न यह चाहा कि उन्हें दादा की पुत्री होने के कारण कोई रियायत मिले या न ही उस सब को करते हुए दुख या कठिनाई अनुभव की। सब कुछ को सहजता से स्वीकार किया। हां अभ्यास न होने के कारण कुछ कठिनाई जरूर आई पर सब कुछ को हंसकर स्वीकार किया। कराची से भारत आने के बाद इस ज्ञान को लोक कल्याण के लिए विस्तार करने के कार्य में जिन बहनों और भाईयों को सेवायें दी गई उनमें निर्मल शांता दादी भी थीं। 1964 से तो वे कोलकाता में बंगाल सहित पूरे पूर्वांचल के राज्यों और नेपाल जिसे इस्टर्न झोन कहा जाता था, में ज्ञान और सेवा के कार्यों का विस्तार करने का दायित्व संभालती रहीं हैं। इससे पहले भी अमृतसर, बम्बई, दिल्ली के अनेक स्थानों पर ज्ञान-योग के माध्यम से सेवाओं की साथी रहीं। उन्होंने बिहार, उड़ीसा, असम, तमिलनाडु सहित अनेक प्रदेशों में जाकर इस ज्ञान से लोगों को परिचित कराया और सेवाओं को विस्तार करने में अपने भूमिका निभाई। सब जानते थे कि वे ब्रह्मा बाबा की पुत्री हैं पर न तो बाबा ने और न दादी ने अपने किसी कार्य या व्यवहार से यह भासित नहीं होने दिया।

शेष पृष्ठ 30 पर...

हम से ही बन रहा है आज का समाज

अथातो...

प्रो. कमल दीक्षित

संसार, साधना और परमात्मा एक दूसरे से जुड़े हुए शब्द हैं। संसार में वह सब कुछ है जो हमारे आसपास है। जो हमारे ही कामों का विस्तार है। जो कुछ हम चाहते, संभालकर रखते हैं और उसका उपभोग करते हैं। यही बंधन है और यही मुक्ति का द्वार भी है। इस बंधन से मुक्ति का दरवाजा साधना है। साधना से ही संसार छूट जाता है और परमात्मा की प्रतीती होती है। परमात्मा को पाने के लिए साधना ही मार्ग है। इन तीनों के बारे में बड़ा भ्रम भी है। इसी भ्रम में हर किसी समर्थ और गुण-शक्ति युक्त को परमात्मा का रूप मान लिया गया। प्रकृति और उसके अवयव परमात्म रूप ही मान लिए गये। देवताओं - राम, कृष्ण, हनुमान आदि को परमात्मा का ही रूप मानकर पूजते रहे हैं। ऐसे ही शरीर को तपाने, श्वांस को साधने, नाम को जपने, हवन आदि को करने को ही साधना का पर्याय मान लिया। अब भी इस पर विमर्श और बहस होती ही है कि सच क्या है- संसार, परमात्मा या उसको जानने का उपाय साधना।

स्वर्ग को हम संसार नहीं मानते जबकि वह भी रहने, खाने-पीने और उपभोग की ही जगह है। उसे हम देवताओं का घर कहते हैं। जहां फरिश्ते रहते हैं, सूक्ष्म अस्तित्व है, उसे भी संसार नहीं कहा जाता। जो आत्मा का अधिवास है, उसे तो शांति का धाम या निर्वाण कहकर पृथक ही कर देते हैं। वह भी संसार नहीं है। संसार तो वही है जहां अभी हम हैं और जहां हम नहीं रहना चाहते हैं। इसीलिए तो हमारी कामनाओं और प्रार्थनाओं में स्वर्ग और सतयुग तो है, संसार नहीं। है भी तो इस रूप में कि यह संसार ही स्वर्ग हो जाये। सच यह भी है कि यह संसार हमारी ही रचना तो है। हमारी कामनाओं, वासनाओं से प्रवृत्त कर्मों से ही तो उसकी रचना हुई है। जो ऐसी रचना नहीं है, वह संसार भी नहीं है। इसीलिए प्रकृति को हम संसार नहीं कहते। प्रवृत्ति को संसार मानते हैं। हमें प्रतिक्षण कर्म तो करना ही है। जानकर और अनजाने में भी कर्म का यह सिलसिला अनवरत जारी रहता है। हमारे कर्म भी हमें जगत में सिध्दि दिलाने में समर्थ हैं। सिद्धि याने सफलता। इसी का एक मतलब है सामर्थ्य या शक्ति। श्रीमद्भगवत गीता में भी कहा गया है कि कर्म के बिना तो कोई गति नहीं है यानी कर्म तो करना ही है। इसलिए तू आसक्ति रहित होकर कर्म कर। वे कर्म कर जो कर्तव्य कर्म हैं। उन्हें अच्छी तरह से कर। इस तरह से आसक्ति से रहित होकर कर्तव्य कर्मों को भलीभांति करता हुआ तू परमात्मा को प्राप्त हो जायेगा। जनकादि ज्ञानीजन ऐसे ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

संसार को स्वर्ग और व्यक्ति को समर्थ और सिद्धि सम्पन्न बनाना ही ध्येय है। साधना इस परिवर्तन का उपाय है। लोक कल्याण और मानवीय कल्याण के लिए जो कुछ भी किया जाता है या जा रहा है उसका ध्येय भी यही है पर प्राप्ति वह नहीं है जो चाही गई। कारण यही है कि हमारे सभी कर्म आसक्ति के कारण हैं। संसार और संबंधों में हमारी आसक्ति है। संसार का एक अर्थ भोगना भी है और इस ऐंद्रिक उपभोग में भी हमारी आसक्ति है। यह आसक्ति जनक जैसे लोगों में नहीं थी। हमारे देखे और सुने हुए व्यक्तियों में भी नहीं थी। दादा लेखराज जिन्हें ईश्वरीय प्रतीती के बाद ब्रह्मा बाबा कहा गया, ऐसे ही थे। अरविन्द, विवेकानंद आदि भी ऐसे ही थे। उनकी आसक्ति समाप्त हुई अपने को जानकर। यह जानकर कि वे अपने शरीर में तो हैं पर वह शरीर वे नहीं हैं। वे आत्मा हैं। आत्मा के कारण हैं। उनकी आत्मा अपने ही कार्यों से उच्चतम और निम्नतम स्वरूप को प्राप्त होती रही है। आत्मा के सहारे ही उन्हें परमात्मा की प्रतीती हुई। ब्रह्मा बाबा को तो प्रतीती के साथ ही माध्यम बनने का अवसर भी मिला और तब उन्होंने जाना कि किस तरह आत्मा ही असुर और देव गुणों से युक्त होकर उसी तरह के कर्म करने के लिए प्रवृत्त होती है।

ऐसा जानना और अपने कर्मों के लिए विवेकसम्पन्न होना साधना का परिणाम है। यह साधना होती तो शरीर के माध्यम से ही है। शरीर के लिए भी कुछ कर्तव्य कर्म हैं। सांस लेना, भोजन, पचन, रक्त संचरण आदि। पर आत्मा के लिए कर्तव्य कर्म क्या हैं यह हम सामान्यत: भूल जाते हैं और साधना या आध्यात्मिक संगठन में होते हुए भी उस प्रतीती को नहीं प्राप्त होते हैं जिसे परमात्मा मिल गया है, ऐसा कहा जाता है।

तीन तरह के साधकों को प्राय: सभी तरह के आध्यात्मिक संगठनों में देखा-समझा जा सकता है। एक तो वे साधक हैं जो संसार और साधना को परस्पर सहयोगी मानते हुए साधन करते रहते हैं। संसार भी विरोध नहीं करता और उन्हें भी साधना विरोधी नहीं लगती। वे आत्मा के कर्तव्य कर्मों के साथ ही शरीर की वासनाओं के कर्म करते हुए आनंद से चलते रहते हैं। ऐसे भी लोग होते हैं जो अध्यात्म को संसार की झंझटों से मुक्त हो जाने का अवसर मानते हैं।

शेष पृष्ठ 30 पर...

सत्य किसी की राय पर निर्भर नहीं है

जे. कृष्णमूर्ति

प्रश्न है कि गुरु आवश्यक है या नहीं। क्या सत्य दूसरे के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है? कुछ कहते हैं कि किया जा सकता है और कुछ कहते हैं कि नहीं किया जा सकता। हम इसकी सच्चाई को जानना चाहते हैं, यह नहीं कि किसी दूसरे की तुलना में मेरा मत क्या है। इस विषय में मेरा कोई मत नहीं है। या तो गुरु आवश्यक है, या फिर नहीं है। अत: आपके लिए गुरु स्वीकार करना आवश्यक है या नहीं, यह कोई आपकी या मेरी राय का प्रश्न नहीं है। किसी भी बात की सच्चाई किसी की राय पर निर्भर नहीं करती, चाहे वह राय कितनी भी गंभीर, विद्वत्तापूर्ण, लोकप्रिय और सार्वभौमिक क्यों न हो। सच्चाई को तो वास्तव में ढूंढ निकालना होता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि हम गुरु चाहते ही क्यों हैं? हम कहते हैं कि हमें एक गुरु की आवश्यकता है। क्योंकि हम भ्रांति में हैं और गुरु मददगार होता है। वह बताएगा कि सत्य क्या है। वह समझने में हमारी सहायता करेगा। वह जीवन के बारे में हमसे कहीं अधिक जानता है। वह एक पिता की तरह, एक अध्यापक की तरह जीवन में हमारा मार्गदर्शन करेगा। उसका अनुभव व्यापक है और हमारा बहुत कम है। वह अपने अधिक अनुभव के द्वारा हमारी सहायता करेगा आदि-आदि। अत: मूल बात यह है कि आप किसी गुरु के निकट जाते ही इसलिए हैं क्योंकि आप भ्रांत होते हैं। अगर आप अपने आप में स्पष्ट होते, तो आप किसी गुरु के पास न जाते। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि आप अपने रोम-रोम में खुश होते, यदि समस्याएं न होतीं, यदि आपने जीवन को पूर्णतया समझ लिया होता, तो आप किसी गुरु के पास न जाते। मुझे उम्मीद है कि आप इसके तात्पर्य को देख पा रहे हैं। चूंकि आप भ्रांत हैं, आप गुरु की खोज में हैं। आप उसके पास जाते हैं, इस उम्मीद के साथ कि वह आपको जीने की राह बताएगा, आपकी उलझनों को दूर कर देगा और आपको सत्य की पहचान कराएगा। आप किसी गुरु का चयन करते हैं क्योंकि आप भ्रांत हैं और आस लगाते हैं कि आप जो चाहते हैं वह गुरु आपको देगा। आप एक ऐसे गुरु को स्वीकार करते हैं जो आपकी मांग को पूरा करे। गुरु से मिलने वाली परितुष्टि के आधार पर ही आप गुरु को चुनते हैं और आपका यह चुनाव आप की तुष्टि पर ही आधारित होता है। आप ऐसे

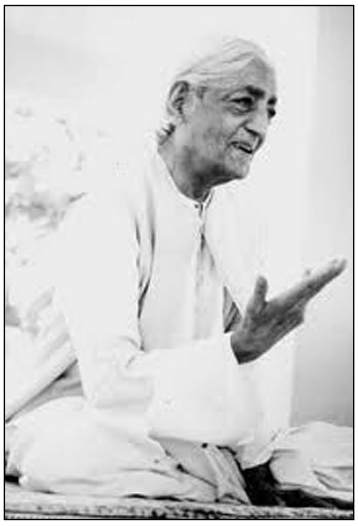

यदि हम संबंध को नहीं समझते, तो गुरु चाहे जो भी कहता रहे व्यर्थ है क्योंकि यदि मैं इस संबंध को नहीं समझ पाता हूं, संपत्ति के साथ अपने संबंध को, व्यक्तियों और विचारों के साथ अपने संबंध को, तो मेरे भीतर के द्वंद्व को दूसरा और कौन सुलझा सकता है? इस द्वंद्व को, इस अस्पष्टता को दूर करने के लिए आवश्यक है कि मैं स्वयं इसे जानूं-समझूं, जिसका अर्थ है कि संबंधों में स्वयं के प्रति जागरूक रहूं और जागरूक रहने के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है।

गुरु को नहीं स्वीकार करते जो कहता है, 'आत्म-निर्भर बनें'। अपने पूर्वाग्रहों के अनुसार ही आप उसे चुनते हैं। चूंकि आप गुरु का चयन उस परितुष्टि के आधार पर करते हैं जो वह आपको प्रदान करता है, तो आप सत्य की खोज नहीं कर रहे हैं, बल्कि अपनी दुविधा से बाहर निकलने का उपाय ढूंढ रहे हैं और दुविधा से बाहर निकलने के उस उपाय को ही गलती से सत्य कह दिया जाता है। सबसे पहले हम इस विचार की परीक्षा करें कि क्या कोई गुरु हमारी अस्त-व्यस्तता को, भीतरी गड़बड़ी को समाप्त कर सकता है? क्या कोई भी दूसरा व्यक्ति हमारी दुविधा को दूर कर सकता है? दुविधा, जो कि हमारी ही क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का फल है। हम ने ही उसे रचा है। अंदर और बाहर, अस्तित्व के सभी स्तरों पर होने वाले इस क्लेश को, इस संघर्ष को, आप क्या समझते हैं कि इसे किसी और ने उत्पन्न किया है? यह हमारे ही अपने आपको न जानने का नतीजा है। हम अपने को गहराई से नहीं समझते। अपने द्वंद्व, अपनी प्रतिक्रियाएं, अपनी पीड़ाएं इन सब को नहीं समझ पाते। और इसलिए हम किसी गुरु के पास जाते हैं, यह सोचकर कि वह इस दुविधा, इस अस्त-व्यस्तता से बाहर निकलने में हमारी सहायता करेगा। वर्तमान से अपने संबंध में ही हम स्वयं को समझ सकते हैं और संबंध ही गुरु है न कि बाहर कोई व्यक्ति। यदि हम संबंध को नहीं समझते, तो गुरु चाहे जो भी कहता रहे व्यर्थ है क्योंकि यदि मैं इस संबंध को नहीं समझ पाता हूं, संपत्ति के साथ अपने संबंध को, व्यक्तियों और विचारों के साथ अपने संबंध को, तो मेरे भीतर के द्वंद्व को दूसरा और कौन सुलझा सकता है? इस द्वंद्व को, इस अस्पष्टता को दूर करने के लिए आवश्यक है कि मैं स्वयं इसे जानूं-समझूं, जिसका अर्थ है कि संबंधों में स्वयं के प्रति जागरूक रहूं और जागरूक रहने के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है।

यदि मैं स्वयं को नहीं जानता, तो गुरु किस काम का! जिस तरह एक राजनीतिक नेता का चुनाव उन लोगों के द्वारा किया जाता है जो भ्रांत हैं और इसीलिए उनका चुनाव भी भ्रांतिपूर्ण होता है। उसी तरह मैं गुरु चुन लिया करता हूं। मैं केवल अपने विभ्रम के तहत उसका चयन करता हूं। अत: राजनीतिक नेता की तरह, गुरु भी भ्रांत होता है।

महत्व इस बात का नहीं कि सही कौन

है। मैं ठीक हूं या वे व्यक्ति जो कहते हैं कि गुरु आवश्यक हैं। महत्वपूर्ण यह पता लगाना है कि आपको गुरु की आवश्यकता ही क्यों पड़ती है। तमाम तरह के शोषण के लिए गुरु हुआ करते हैं, लेकिन यहां वह मुद्दा अप्रासंगिक है। यदि आपको कोई बताए कि आप उन्नति कर रहे हैं, तो आपको बड़ा संतोष होता है। परंतु यह पता लगाना कि आपको गुरु की दरकार क्यों होती है वही असली बात है। कोई आपको दिशा-संकेत दे सकता है, पर काम तो सारा आपको खुद ही करना होता है, भले ही आपका कोई गुरु भी हो। चूंकि आप यह सब नहीं करना चाहते, आप इसकी जिम्मेदारी गुरु पर छोड़ देते हैं। जब स्व का अंशमात्र भी बोध होने लगे, गुरु का उपयोग नहीं रह जाता। कोई गुरु, कोई पुस्तक अथवा शास्त्र आपको स्वबोध नहीं दे सकता। यह तभी आता है जब आप संबंधों के बीच स्वयं के प्रति सजग होते हैं। होने का अर्थ ही है संबंधित होना।

संबंध को न समझना क्लेश है, कलह है। अपनी संपत्ति के साथ अपने संबंध के प्रति जागरूक न होना विभ्रम के, दुविधा के अनेक कारणों में से एक है। यदि आप संपत्ति के साथ अपने सही संबंध को नहीं जानते, तो द्वंद्व अनिवार्य है, जो कि समाज के द्वंद्व को भी बढ़ाएगा। यदि आप अपने और अपनी पत्नी के बीच, अपने और अपने पुत्र के बीच संबंध को नहीं समझते, तो उस संबंध से पैदा होने वाले द्वंद्व का निराकरण कोई दूसरा कैसे कर सकता है? यही बात विचारों, विश्वासों आदि पर लागू होती है। व्यक्तियों के साथ, संपत्ति के साथ, विचारों के साथ अपने संबंध के बारे में स्पष्टता न होने के कारण आप गुरु खोजते हैं। यदि वह वस्तुत: गुरु है, तो वह आपको स्वयं को समझने के लिए कहेगा। सारी गलतफहमी तथा उलझन की वजह आप ही हैं, और आप इस द्वंद्व का समाधान तभी कर पाएंगे जब आप स्वयं को पारस्परिक संबंध के बीच समझ लें।

आप किसी दूसरे के माध्यम से सत्य को नहीं पा सकते। ऐसा आप कैसे कर सकते हैं? सत्य कोई स्थैतिक तत्व, जड़ चीज़ नहीं है। उसका कोई निश्चित स्थान नहीं है। वह कोई साध्य, कोई लक्ष्य नहीं है, बल्कि वह तो सजीव, गतिशील, सतर्क, जीवंत है। वह कोई साध्य कैसे हो सकता है? यदि सत्य कोई निश्चित बिंदु है, तो वह सत्य नहीं है, तब वह मात्र एक विचार या मत है। सत्य अज्ञात है और सत्य को खोजने वाला मन उसे कभी न पा सकेगा क्योंकि मन ज्ञात से बना है। यह अतीत का, समय का परिणाम है। इसका आप स्वयं निरीक्षण कर सकते हैं। मन ज्ञात का उपकरण है। अत: वह अज्ञात को प्राप्त नहीं कर सकता। उसकी गति केवल ज्ञात से ज्ञात की ओर है। जब मन सत्य को खोजता है, वह सत्य, जिसके विषय में उसने पुस्तकों में पढ़ा है, तो वह 'सत्य' आत्म-प्रक्षिप्त होता है। क्योंकि तब मन किसी ज्ञात का, पहले की अपेक्षा अधिक संतोषजनक ज्ञात का अनुसरण मात्र करता है। जब मन सत्य खोजता है, तो वह अपने ही प्रक्षेपण खोज रहा होता है, सत्य नहीं। अंतत: आदर्श हमारा ही प्रक्षेपण होता है, वह काल्पनिक, अयथार्थ होता है। 'जो है' वही यथार्थ है, उसका विपरीत नहीं। परंतु वह मन जो यथार्थ को खोज रहा है, ईश्वर को खोज रहा है, वह ज्ञात को ही खोज रहा है। जब आप ईश्वर के बारे में सोचते हैं, आपका ईश्वर आपके अपने विचार का प्रक्षेपण होता है। सामाजिक प्रभावों का परिणाम होता है। आप केवल ज्ञात के विषय में ही सोच सकते हैं। अज्ञात के विषय में नहीं, आप सत्य पर एकाग्रता नहीं साध सकते। जैसे ही आप अज्ञात के बारे में सोचते हैं, वह केवल आत्म-प्रक्षिप्त ज्ञात ही होता है। ईश्वर या सत्य के बारे में सोचा नहीं जा सकता। यदि आप उसके बारे में सोच लेते हैं, तो वह सत्य नहीं है। सत्य को खोजा नहीं जा सकता। वह आप तक आता है। आप केवल उसी के पीछे दौड़ सकते हैं, जो ज्ञात है। जब मन ज्ञात के परिणामों से उत्पीड़ित नहीं होता, केवल तभी सत्य स्वयं को प्रकट कर सकता है। सत्य तो हर पत्ते में, हर आंसू में है। उसे क्षण-क्षण में जाना जाता है। सत्य तक आपको कोई नहीं ले जा सकता, और यदि कोई आपको ले भी जाए, तो वह यात्रा केवल ज्ञात की ओर ही होगी।

> मन ज्ञात से बना है। यह अतीत का, समय का परिणाम है। इसका आप स्वयं निरीक्षण कर सकते हैं। मन ज्ञात का उपकरण है। अत: वह अज्ञात को प्राप्त नहीं कर सकता। उसकी गति केवल ज्ञात से ज्ञात की ओर है। जब मन सत्य को खोजता है, वह सत्य, जिसके विषय में उसने पुस्तकों में पढ़ा है, तो वह 'सत्य' आत्म-प्रक्षिप्त होता है। क्योंकि तब मन किसी ज्ञात का, पहले की अपेक्षा अधिक संतोषजनक ज्ञात का अनुसरण मात्र करता है। जब मन सत्य खोजता है, तो वह अपने ही प्रक्षेपण खोज रहा होता है, सत्य नहीं।

सत्य का आगमन केवल उसी मन में होता है, जो ज्ञात से रिक्त है। वह उस अवस्था में आता है, जब ज्ञात अनुपस्थित है, कार्यरत नहीं है। मन ज्ञात का भंडार है, वह ज्ञात का अवशेष है। उस अवस्था में होने के लिए, जिसमें अज्ञात अस्तित्व में आता है, मन को अपने प्रति, अपने चेतन तथा अचेतन अतीत के अनुभवों के प्रति, अपने प्रत्युत्तरों, अपनी प्रतिक्रियाओं एवं संरचना के प्रति जागरूक होना होगा। स्वयं को पूरी तरह से जान लेने पर ज्ञात का अंत हो जाता है, मन ज्ञात से पूर्णतया रिक्त हो जाता है। केवल तभी, अनामंत्रित ही, सत्य आप तक आ सकता है। सत्य न तो आपका है, न मेरा। आप इसकी उपासना नहीं कर सकते। जिस क्षण यह ज्ञात होता है, अयथार्थ ही होता है। प्रतीक यथार्थ नहीं है, छवि या प्रतिमा यथार्थ नहीं है; किंतु जब स्व की समझ होती है, स्व का अंत होता है, तब शाश्वत का आविर्भाव होता है।

(पुस्तक: प्रथम और अंतिम मुक्ति से)

पृष्ठभूमि से नेतृत्व करना

श्री श्री रविशंकर

क्या आपको पता है कि एक घर में असली नेता कौन है, पिता या बच्चे? आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि बच्चे ही घर पर शासन करते हैं। सारा परिवार बच्चों के इर्दगिर्द घूमता है, इसलिए मैं खुद को बच्चा हू मानता हूं। अक्सर हम देखते हैं कि जो लोग बहुत समझदार हैं, वे संवेदनशील नहीं होते, क्योंकि उनका ध्यान तो कारण पर ही केंद्रित रहता है। और कुछ लोग इतने संवेदनशील होते हैं कि पलक झपकते ही उनकी आंखों में आसूं आ जाते हैं। वे इतने समझदार नहीं होते। दोनों में से कोई भी अच्छा नेता नहीं बन सकता क्योंकि अच्छा नेता बनने के लिए समझदारी और संवेदनशीलता, दिल और दिमाग में सामंजस्य होना अति आवश्यक है। हमारा जीवन इन दोनों महत्वपूर्ण पहलुओं पर टिका हुआ है, बुद्धि अपनी जगह है भावनाएं अपनी जगह।

पिछली सदी में सबसे अधिक महत्व ज्ञान को दिया जाता था। पुरुष की आंख में आंसूओं को बहुत आश्चर्य से देखा जाता था कि आदमी कैसे रो सकता है, वहीं एक महिला के हाथ में अगर माइक हो और वह अपने अधिकारों की मांग करती थी तो उसे एक अजीब दृष्टि से देखा जाता था। इस प्रकार का वातावरण था जिसमें महिलाएं नेतृत्व नहीं कर सकती थी। महिलाओं को बुद्धि की शक्ति नहीं दी जाती थी जिससे वह बोल सके, क्योंकि उन्हें एक तरफ धकेल दिया जाता था। यह कहकर कि एक सच्चा व संवेदनशील दौड़ है, परंतु आज दृष्टिकोण बदल चुका है। आज हमें संवदेनशीलता और समझदारी दोनों की जरूरत है। हर नेता में एक नारी का कोमल भाव ही और हर नारी में पुरुषोचित दृढ़ता और शक्ति की आवश्यकता है, तभी कोई संगठन आगे बढ़ सकता है।

मैं आपको महत्वपूर्ण बात बताना चाहता हूं। जब भी हम नेतृत्व की बात करते हैं तो वह बात जो हमें प्रिय हो, हमें स्वच्छंद वातावरण की आवश्यकता होती है, तो क्यों न हमारे आस पास के लोगों का आधे मिनट अभिवादन करें और कहे कि मैं आपका हो गया हूं। क्या आपने अपने आसपास के लोगों का कभी अभिवादन किया है। समझ लोगों का स्वागत करने में है? आप में से

कुछ तो दूसरों को नमस्ते करने में शर्माते हैं, कई बार तो हम नेताओं की भी स्थिति देखते हैं। वे लोगों की ओर देखते तक नहीं कहीं ओर ही देख कर बात करते हैं। वह लोगों के साथ संबंधित नहीं हो पाते। तो क्या आप सच में अपने पास के लोगों से कहते हैं कि मैं आपका हूं, या बस औपचारिकता कर रहे हैं।

आपने देखा होगा कि जब विमानयात्रा करते हैं तो विमान की परिचारिका यह कहते हुए आपका स्वागत करती है कि – आपका दिन अच्छा हो, वे इतना सब कुछ कहती है, पर क्या वह सही में वैसा ही चाहती है। इसी प्रकार हम इन भावनाओं को दिन भर एक–दूसरे को आदान–प्रदान करते हैं तो वह भी उसी प्रकार का विचार है। लेकिन जब कोई आपका अपना प्रिय जैसे माँ, बहन, मित्र आदि आपको वैसे कहते हैं तो उन शब्दों में आपको स्पंदन महसूस होता है।

बहुत सी बातें हावभाव के द्वारा होती हैं। तब शब्दों की भूमिका छोटी होती है। आपके कुछ कहने से पूर्व आपके हाव भाव आपकी बात कह देते हैं। एक नेता जो अपने शब्दों का सहारा लेता है, उन्हें ज्ञान होना चाहिए कि उनके शब्द का कोई मूल्य नहीं होने वाला जब तक कि वह अंदर से न आएं। इसी को सच्चाई कहते हैं, जहां हावभाव, भावनाओं और शब्दों का सामंजस्य बना रहे।

तुम कह सकते हो कि इन तीनों (हाव भाव, भावना, शब्द) का मिलना कठिन है, यह कैसे संभव है? यदि हर कोई ये मेल कर देगा तो वह संत बन जाएगा जो संभव नहीं है। मैं आपसे सहमत हूं, यह मेल १०० प्रतिशत नहीं २५ प्रतिशत होने पर भी लोग आपको समझने लगेंगे। लोग समझदार हैं वे समझ सकते हैं कि तुम उनका वास्तविक रूप से अभिवादन कर रहे हो या औपचारिकता निभा रहे हो।

आप सभी नेता हैं। महत्वपूर्ण यह है कि आप नेतृत्व प्रदान करे, नेता वह नहीं जो कहें – मैं नेता हूं, आप मेरे पीछे आओ....बल्कि वह है जो कहे आप आगे बढ़ो मैं तुम्हारे साथ हूं।

क्या आप अपने बगल में बैठ आदमी को कह सकते हैं कि आपको उनपर विश्वास नहीं। अगर आपका जीवनसाथी ही वह व्यक्ति हो तो यह अच्छा अवसर है। आप सभी बहुत शीर्घ्र यह कह देंगे। यह कह पाना इतना आसान नहीं है, मुझे आप पर विश्वास नहीं और हंसना शुरू कर दिया। परिवर्तन शुरू हो चुका है। आप उनके शब्दों पर विश्वास नहीं कर पाते ना ही वे आपके शब्दों पर।

अभी के लिए अपनी आंखें बंद करें और सोचे कि आप पर कोई विश्वास नहीं करता। कोई आपसे कहे कि वह आप पर विश्वास नहीं करता, अब आप अपनी आंख खोल सकते हैं, अब आपको कैसा महसूस हो रहा है। चिंतामुक्त, डरावना। आप जानते हैं हमारे इस व्यवहार से कि मुझे किसी पर विश्वास नहीं होने के भाव उत्पन्न होते हैं। हम अपने आसपास ऐसी ही हावभाव तैयार कर लेते हैं, जिसका प्रभाव होता है कि झगड़े उत्पन्न होते हैं और समाज का पतन होता है।

क्या आपको पता है कि बहुत से झगड़े उत्पन्न होने से पहले ही खत्म हो सकते हैं।

शेष पृष्ठ 12 पर...

जिएं जिंदगी ऐसे

आचार्य विजय रामचन्द्रसूरीश्वर महाराज

ईश्वर ने ये जिंदगी रोने -झींकने के लिए नहीं दी। प्रभु ने इतनी सुंदर सृष्टि बनाई, पहाड़ बनाये, झरने बनाये, रिश्ते बनाये। खुद भी हंसो दूसरों को भी हंसाओ। गलती इंसान से होती ही है। अपनी गलती मानकर सॉरी कहने से कोई छोटा नहीं हो जाता। बल्कि प्यार बढ़ता है। जो चीज नहीं मिली उसके लिए शिकायत करने से अच्छा है। उस प्रभु को धन्यवाद दो। उसने तुम्हे दो आँखे दी प्रकृति को निहारने के लिए। दो कान दिए पक्षियों का कलरव सुनने के लिए, दो हाथ दिए कर्म करने के लिए, शरीर दिया है महसूस करने के लिए, दिमाग दिया है सोचने के लिए, तो फिर दु:ख किस बात का है, प्रकृति के साथ जिओ। किसी से कोई अपेक्षा मत करो क्योंकि अपेक्षा करोगे तो उपेक्षा तो होगी ही। उदार बनो, क्षमा करने से संतोष मिलेगा। गुलाब बनो, काँटों के बीच रहकर भी खिलता है, महकता है, सबको महकता है, तो उदास क्यों हुआ जाए, प्यार और खुशियाँ बांटो तुम्हे दोगुनी खुशी मिलेगी। किसी के चेरे पे मुस्कान लाकर देखो, तुम्हारे लबों पर मुस्कान अपने आप आ जाएगी।

पशुओं से अधिक हिंसक है स्वार्थी मनुष्य

आत्मा, पुण्य, पाप आदि का जिसे खयाल नहीं और जो संसार-सुख का तीव्र पिपासु है, ऐसा मनुष्य, जगत के लिए श्रापरूप न बने तो एक आश्चर्य ही होगा। विषय-कषाय में आनंद और अर्थ-काम के योग में सुख मानने वाले मनुष्य हिंसक पशुओं से भी ज्यादा खतरनाक हैं। स्वार्थी मनुष्य जितना उपद्रव मचाता है, उतना उपद्रव पशु भी नहीं मचाते हैं। संसार में आसक्त मनुष्य में दुनियावी पदार्थ पाने व उन पदार्थों के संग्रह-संरक्षण की जो भूख होती है, वैसी भूख और संग्रहवृत्ति पशुओं में भी नहीं होती है। मनुष्य योजनापूर्वक जो अमर्यादित हिंसा करता है, उतनी हिंसा पशु भी नहीं करता है। मनुष्य योजनापूर्वक पाप करता है और उन पापों को छिपाता है। कई ऐसे ठग होते हैं जो सरकार से भी पकड़े नहीं जाते हैं और कदाचित् पकड़ें जाएं तो वकीलों द्वारा अपना बचाव कर लेते हैं। आज मनुष्य मात्र के सभी पाप प्रकट हो जाएं तो कानून के हिसाब से ही कितने लोग जेल से बाहर रहने योग्य निकलेंगे? ऐसे मनुष्यों को मानव कहें या राक्षस, यही विचारणीय है। जगत में ऐसे मनुष्य ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं, त्यों-त्यों उपद्रव भी बढ़ते हैं, यह स्वाभाविक है।

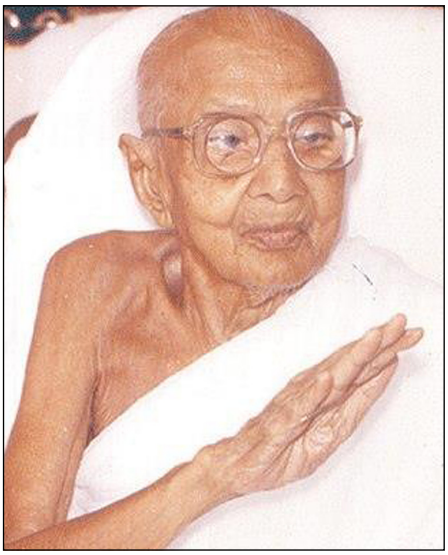

मनुष्य के हृदय में रहे जहर को दूर करने का काम धर्म करता है। जिसके हृदय में धर्म का प्रवेश होता है, उसके हृदय में से जहर दूर हो जाता है। आज मनुष्य के हृदय में इतना जहर उछल रहा है कि जिसके कारण संहार के साधन बढ़ रहे हैं। आज मानव, मानवता छोड़कर राक्षस बनता जा रहा है। अपने स्वार्थ में बाधक बनने वाले का संहार किया जाता है, उसमें वीरता और सेवा मानी जाती है। आर्य देश में यह मनोवृत्ति नहीं होनी चाहिए, परन्तु आज वातावरण बिगड़ रहा है।

धर्म ही दूर कर सकता है मनुष्य का जहर

मनुष्य के हृदय में रहे जहर को दूर करने का काम धर्म करता है। जिसके हृदय में धर्म का प्रवेश होता है, उसके हृदय में से जहर दूर हो जाता है। आज मनुष्य के हृदय में इतना जहर उछल रहा है कि जिसके कारण संहार के साधन बढ़ रहे हैं। आज मानव, मानवता छोड़कर राक्षस बनता जा रहा है। अपने स्वार्थ में बाधक बनने वाले का संहार किया जाता है, उसमें वीरता और सेवा मानी जाती है। आर्य देश में यह मनोवृत्ति नहीं होनी चाहिए, परन्तु आज वातावरण बिगड़ रहा है।

यह भव भोग के लिए नहीं, त्याग के लिए है। दुनियावी पदार्थों की ममता दूर हो और आत्म-सुख प्रकट करने की कामना उत्पन्न हो, तब मानव, दानव के बजाय देव बन सकता है। आपको क्या बनना है, इसका निर्णय आप ही कीजिए। 'अनंतज्ञानियों की आज्ञानुसार पाप-त्याग और धर्म-सेवन का मार्ग बताना हमारा काम है, परन्तु उसे आचरण में लाना तो आपके हाथ में है न?'

पाप से उपार्जित सभी वस्तुएं यहीं रहने वाली है और पाप साथ चलने वाला है, यदि ऐसा विश्वास हो तो पाप से बचने के लिए प्रयत्नशील बनो, स्वार्थी मनोवृत्ति का त्याग करो। स्वार्थ पाप कराता है, 'पाप से दु:ख और धर्म से सुख', इस बात पर आपको विश्वास है, इसलिए सीधी बात करता हूं कि पाप छोड़ो और धर्म का सेवन करो, जिससे आपका दु:ख चला जाए और सुख प्राप्त हो। **प्रस्तुति-मदन मोदी**

जीवन के प्रति खुलें

टी.टी. रंगराजन

हममें जीवन निर्माण, मानवीयता निर्माण तथा चरित्र निर्माण करने वाले विचार होने चाहिए। यदि ऐसे पांच विचार भी आप आत्मसात कर लेते हैं तो, उन्हें अपने जीवन का चरित्र बना लेते हैं, तो आप उस व्यक्ति से कही ज्यादा शिक्षित हैं, जिसने पूरा पुस्तकालय कंठस्त कर रखा हो। हमें उस शिक्षा की जरुरत है, जिसके द्वारा चरित्र निर्माण हो, मनोबल में वृद्धि हो, प्रज्ञा का विस्तार हो और जिसके बल पर व्यक्ति स्वयं के पैरों पर खड़ा हो सके।

स्वामी विवेकानंद ने कहा था 'आपके मस्तिष्क में भर दी गई वह ढेर सारी जानकारी और सूचना शिक्षा नहीं है,जो अपने जीवन के अनुपयुक्त होने के कारण जीवन भर उसमें उत्पात मचाती रहती है। हममें जीवन निर्माण, मानवीयता निर्माण तथा चरित्र निर्माण करने वाले विचार होने चाहिए। यदि ऐसे पांच विचार भी आप आत्मसात कर लेते हैं तो, उन्हें अपने जीवन का चरित्र बना लेते हैं, तो आप उस व्यक्ति से कही ज्यादा शिक्षित हैं, जिसने पूरा पुस्तकालय कंठस्त कर रखा हो। हमें उस शिक्षा की जरुरत है, जिसके द्वारा चरित्र निर्माण हो, मनोबल में वृद्धि हो, प्रज्ञा का विस्तार हो और जिसके बल पर व्यक्ति स्वयं के पैरों पर खड़ा हो सके।'

जाने क्यों और कैसे हम किताबी ज्ञान को, स्कूली पढ़ाई को ही शिक्षित होना मान बैठे हैं। अभिभावकों से लेकर शिक्षकों तक, हर किसी का पूरा ध्यान स्कूली पढ़ाई की ओर ही हो गया है। कोई बालक यदि जीवन के विज्ञान से अनभिज्ञ रहता है तो विज्ञान पढ़कर भी भला वह क्या कर लेगा? हम अपने बच्चों को इतिहास पढ़ने और उसे रटने लिए तो कहते हैं, लेकिन हम उन्हें इतिहास रचने के लिए नहीं कहते। कोई बालक अपनी पहली, दूसरी या तीसरी भाषा के साथ क या कर लेगा यदि उसमें संवाद कौशल, दूसरे तक अपनी बात स्पष्ट ढंग से पहुंचाने का कौशल विकसित नहीं हो सका।

मेरी बात को गलत ना समझें। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि किताबी ज्ञान व्यर्थ है, मैं तो इस बात पर बल दे रहा हूं कि सिर्फ किताबें ही शिक्षा को पूरी नहीं

करती। वह बालक के विकास का एक पक्ष तो है, लेकिन एकमात्र पक्ष नहीं। वह जीवन में सहायक तो है लेकिन एकमात्र जीवन नहीं है। जीवन कुछ और भी है। सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाला अपने जीवन में भी सर्वोच्च रहे ऐसा जरुरी नहीं है। और यह भी जरुरी नहीं है कि सारे बैक बेंचर (कक्षा में पीछे बैठने वाले) अपने जीवन में भी बैक बेंचर ही रहते हो। सचमुच हम अक्सर देखते हैं कि 98 प्रतिशत अंक पाने वाले का जीवन औसत समझ लिए हुए अंततः उस 72 प्रतिशत अंक पाने वाले के लिए हर काम कर रहा होता है, जिसमें जीवन की समग्र समझ होती है।

संबंध ही जीवन का असली तानाबाना है। संवाद ही संबंधों की जीवनरेखा होते हैं। सफलता केवल नेतृत्व से जुड़ी होती है – या तो आप नेतृत्व कर रहे होते हैं या किसी के नेतृत्व का अनुसरण कर रहे होते हैं। जहां आप अपना समय लगाते हैं, आपका भविष्य वहीं से बनता है। इसलिए समय प्रबंधन का कौशल ही जीवन प्रबंधन का कौशल है। आप या तो निर्भर करने योग्य होते हैं या फिर किसी पर निर्भर होने योग्य और यह आपकी उस छवि पर निर्भर करता है जो आपने खुद अपने लिए बना ली है। कटु सत्य यह है कि जीवन की इन अनिवार्यताओं में से कोई भी हमारे स्कूली या किताबी ज्ञान प्रणाली का हिस्सा नहीं है।

तो अभिभावकों से, शिक्षकों से, और अन्य उन सभी से, जिनके हाथ में हमारे बच्चों का भविष्य है, अनुरोध है कि कृपा करके हमारे बच्चों को किसी पाठ्यक्रम में मत बांधिए। बच्चों को हम जीवन के प्रति खुलने और खिलने दें और निश्चय ही किताबी ज्ञान के प्रति भी। हम केवल उन प्राप्तांकों को ही नहीं देखते रहें, बल्कि हमें उनके जीवन को भी देखना होगा।

(अप्रेषित पत्र से)

आवश्यकता से अधिक का मोह क्यों?

अखिलेश आरयेदु

समाज में अमीर-गरीब के बीच खाई बढ़ती जा रही है, इसका एक कारण अपरिग्रह का अभाव भी है। हमें आवश्यकता से अधिक संचय कर लेने की चाह को छोड़ना होगा।

महात्मा गांधी ने कहा था-जो व्यक्ति जरूरत से ज्यादा चीजों को इकट्ठा करता है, वह एक तरह की हिंसा करता है। जाहिर है हिंसा करना सभी धर्मों में सबसे बड़ा पाप [बुरा काम] माना गया है। गैरजरूरी चीजें इकट्ठा करके हम अनजाने में ही अनगिनत वंचित व्यक्तियों के बीच की खाई को चौड़ा कर देते हैं। कभी-कभी हम गैरजरूरी चीजें महज दिखावे के लिए और कथित प्रतिष्ठा पाने के लिए खरीद या इकट्ठा कर लेते हैं। वेदों में कहा गया है- हे परमात्मा हमें धन-धान्य से पूर्ण बना दें। वहीं यह भी कहा गया है कि हमारे पास उतने ही भौतिक संसाधन हों, जितने की हमें जरूरत हो। रहीम दास जी कहते हैं- रहिमन इतना दीजिए जामे कुटुम समाय, मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाय। मतलब साफ है कि हमें सिर्फ उतने की ही जरूरत है जितने से हम अपना और परिवार का पेट भर सकें, साथ ही कोई अतिथि आए, तो उसका भी हम सत्कार कर सकें। विचारकों ने इसे समाज विज्ञान की रीढ़ माना है।

मौजूदा दौर विज्ञान का है। हमारी जरूरत में भी विस्तार हुआ है। हमें आज जीवन के साथ चलने के लिए ज्यादा चीजों की जरूरत पड़ती है। मोबाइल फोन, इंटरनेट वगैरह हमारी जरूरत बन चुका है। लेकिन उनमें भी यदि हमारा काम एलसीडी टीवी में चल रहा है, तो हम एलईडी टीवी क्यों इस्तेमाल करें? ज्यादातर हम गैरजरूरी चीजें दिखावे के लिए इकट्ठा करते हैं। इससे लोभ और ईर्ष्या की प्रवृत्ति पनपती है। यदि सच में हमारी वैज्ञानिक सोच है, तो हमें अपनी इस सोच को व्यापक बनाकर समष्टिगत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

अपरिग्रह भी एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जिसे बुद्ध, महावीर और महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों ने स्वीकार किया है। मौजूदा दौर में बड़ी-बड़ी धर्म चर्चाएं होती रहती है, लेकिन अपरिग्रह की अवधारणा का संरक्षण कोई नहीं कर रहा। जबकि इसकी बहुत बड़ी जरूरत है। समाज में बढ़ती गैरबराबरी और महंगाई की मुख्य वजह अपरिग्रह का पालन नहीं करना है। अर्थशास्त्र भी कहता है कि गैरजरूरी तरीके से जब हम चीजों को इकट्ठा करते हैं, तो जमाखोरी को बढ़ावा मिलता है और इससे महंगाई बढ़ती है। आम जिंदगी में आमतौर पर लोग अपरिग्रह जैसी छोटी, लेकिन महत्वपूर्ण बातों को नजरअंदाज कर देते हैं, लेकिन ये महत्वपूर्ण बातें ही व्यक्ति, परिवार और समाज के लिए बहुत फायदेमद होती हैं। दरअसल महापुरुषों द्वारा दी गई शिक्षाएं हमारे संस्कारों और संवेदना का महत्वपूर्ण हिस्सा है। अपरिग्रह का महत्व न समझने की वजह से इंसान जिंदगी भर भौतिक वस्तुओं को जोड़ने में लगा रहता है, जबकि देखा जाए तो भौतिक ससाधन महज जीने की राह को आसान भर कर देते हैं। यहां तक तो ठीक है, लेकिन जब हमारा मूल मकसद धन और भौतिक ससाधनों को इकट्ठा करना हो जाता है, तब जीने की राह आसान होने की जगह कठिन हो जाती है। इससे हम अपना ही नुकसान नहीं करते, बल्कि देश, समाज और सस्कृति का भी जाने-अनजाने में नुकसान करते रहते है।

आज की जिंदगी में हम मात्र भौतिक संसाधन जुटाने के लिए और अधिक से अधिक धनवान कहलाने के लिए झूठ, फरेब, विश्वासघात, धोखा, चोरी, आतंक, नफरत, स्वार्थ और दूसरे तमाम अपराधों को प्रश्रय देते हैं। ये अपराध अपरिग्रह का पालन न करने की वजह से होते हैं। अपरिग्रह की अवधारणा सादा जीवन-उच्च विचार की जीवन शैली से जन्म लेता है। यह अपरिग्रह की पहली सीढ़ी है। जाहिर है बिना पहली सीढ़ी पर कदम रखे हम ऊपर नहीं चढ़ सकते। इसी सीढ़ी पर पैर रखकर हम आत्मोन्नति की ओर बढ़ते हैं।

आज की जिंदगी में हम मात्र भौतिक संसाधन जुटाने के लिए और अधिक से अधिक धनवान कहलाने के लिए झूठ, फरेब, विश्वासघात, धोखा, चोरी, आतंक, नफरत, स्वार्थ और दूसरे तमाम अपराधों को प्रश्रय देते हैं। ये अपराध अपरिग्रह का पालन न करने की वजह से होते हैं। अपरिग्रह की अवधारणा सादा जीवन-उच्च विचार की जीवन शैली से जन्म लेता है। यह अपरिग्रह की पहली सीढ़ी है। जाहिर है बिना पहली सीढ़ी पर कदम रखे हम ऊपर नहीं चढ़ सकते। इसी सीढ़ी पर पैर रखकर हम आत्मोन्नति की ओर बढ़ते हैं। अपरिग्रह का पालन करने से हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ऊर्जा में वृद्धि होती है। हमारा वक्त बचता है, जिसे हम लोगों की सेवा में लगा सकते हैं।

जिस व्यक्ति में अपरिग्रह का सद्गुण नहीं होता, उसमें धन-संपत्ति बटोरने के प्रति आसक्ति जिंदगी भर बनी रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि उसके मन में अशांति, बेचैनी, स्वार्थ, लोभ और दूसरी तमाम बुराइया पनपने लगती है। इन बुराइयों से तमाम शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और सामाजिक बुराइया जिंदगी का हिस्सा बन जाती हैं। हम इंसान होकर भी जानवरों जैसी जिंदगी जीते रहते हैं। जाहिर है, अपरिग्रह जैसे एक सद्गुण के अभाव में हम अपने मकसद से भटकते तो हैं ही, तमाम समस्याओं से भी घिर जाते हैं ।

(मासिकः जनभाव)

सायको न्यूरोबिक दैवी विचारों से

सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव

बी. के. कुमार

सारे विश्व में ध्यान अथवा मेडिटेशन की बहुत सारी विधियां प्रचलित हैं।

वास्तव में देखा जाए तो ध्यान उस क्रिया को कहा जाता है जिसमें मानव स्वयं को स्वतंत्र, ज्योति स्वरूप आत्मा समझ कर स्मृति के माध्यम से ज़्योति स्वरूप परमात्मा से संबंध जोड़ता है। ध्यान की इस भावना को सभी स्वीकार करते हैं। लैटिन भाषा में मेडिटेशन को मेडिसी अर्थात स्वास्थ्य सुधारने की कला कहा गया है। अगर मेडिटेशन वास्तव में स्वास्थ्य सुधारने वाली कला है तो सवाल है कि वह मानव मात्र के कौन से स्वास्थ्य को सुधारती है ? क्योंकि मानव का सामान्य व खुशहाल जीवन जीने के लिए शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि स्वास्थ्य की भी आवश्यकता होती है।

ओशो रजनीश कहते हैं कि किसी को दवाई देकर उसका स्वास्थ्य सुधारने की विधि सबसे निचले दर्जे की विधि है। इसका अर्थ है कि दवाई देने की विधि से कारगर विधियां हमारे पास हैं। उन समस्त विधियों में सबसे श्रेष्ठ है ध्यान विधि। यहां हम साइको न्यूरोबिक हीलिंग के दृष्टिकोण से ध्यान की ऊंचाइयों और गहराइयों पर चर्चा कर रहे हैं।

आज कोई भी स्वास्थ्योपचार बीमारी को लक्षणों के आधार पहचान कर ठीक करने का प्रयास करता है। लक्षणों का सीधा तात्पर्य शारीरिक लक्षणों से होता है। जबकि अधिकतर बीमारियों को मूल कारण अंतर्मन की गहराई में छिपा होता है। जो लक्षणों के रूप में शरीर पर कई बार प्रकट नहीं होता।

दार्शनिकों ने प्रेम अथवा सकारात्मक ऊर्जा के अभाव को बीमरी की संज्ञा दी है। हम यह जानते हैं और मानते हैं कि पृथ्वी पर एक वह भी समय था जब मनुष्य देवी देवताओं के रूप में निवास करता था। वे सदा निरोगी रहते थे और अमूमन 125 से 150 वर्ष जीवित रहते थे, उस कालखंड को सतयुग या त्रेतायुग कहा जाता है। वह समय मानवसृष्टि का खूबसूरत पूर्वार्द्ध था। उनके निरोगी रहने का एकमात्र कारण था नकारात्मक ऊर्जा या भावना का संपूर्ण अभाव।

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार देवी देवता उन्हें कहा जाता है जो जादुई शक्ति के धनी थे। अलौकिक आध्यात्मिक दृष्टि से देवी-देवता उन्हें कहेंगे जो 16 कला संपन्न, संपूर्ण निर्विकारी, संपूर्ण अहिंसक, अष्टशक्ति संपन्न, सतोगुणी हों। सतोगुणी अर्थात आत्मा के सात गुण (प्रेम, शांति, आनंद, सुख, ज्ञान, शक्ति एवँ पवित्रता) से संपन्न थे।

इन सात में से किसी एक का भी अभाव बीमारी का कारण बना जाता है। अत: संपूर्ण स्वास्थ्य पुन: प्राप्त करने के लिए इन सात गुणों को कार्य में लगाना ही साइको न्यूरोबिक्स का मूल आधार है। यह सात गुण हमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक संतुलन प्रदान करते हैं। जो सपूंर्ण स्वास्थ्य का कारण बनते हैं।

सतयुग, त्रेतायुग के देवी देवता रूपी मनुष्यों और द्वापर तथा कलयुग के साधारण दैवीगुण रहित मनुष्यों में मुख्य अंतर यही है कि सतयुग, त्रेतायुग में मनुष्य सदा आत्म-अभिमानी (मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं) रहते थे, जबकि आज मानव देहाभिमानी स्थिति में हो चुका है, सदा आत्मअभिमानी रहना ही देवी-देवताओं के सदा स्वस्थ रहने का कारण था।

सतोप्रधान, सतो से रजो और रजो से तमो अवस्था में आने के लिए प्रकृति की हर चीज बंधायमान है, जिसे विज्ञान ला आफ एंट्रोपी कहता है। इसी कारण जो मानव आत्मा सतयुग, त्रेतायुग में आत्माभिमानी थी, वह द्वापर, कलयुग में रजो, तमो प्रधानता में आते-आते देहाभिमानी बनती गई। परिणाणत: वह अपने मूल सात गुणों को भी खोती गई।

अगर हम कुछ सदियां पीछे जाएं तो

देखेंगे कि पूर्व में इतनी बीमरियां नहीं थी। लेकिन ज्यो-ज्यो समय आगे बढ़ता गया बीमारियों को तादाद बढ़ती गई। रोज नई दवाई, परीक्षण, अनुसंधान हो रहे हैं, आज विज्ञान अपने चरम सीमा के निकट है। विज्ञान हर बीमारी के निराकरण का पूरा प्रयास कर रहा है लेकिन मन कमजोर होने की बीमारी जिससे जीवन तथा आपसी संबंधों में मधुरता कम हो रही है, पर विज्ञान का तनिक भी ध्यान नहीं है। विज्ञान सूक्ष्म चीजों का निर्माण तो कर पाया है पर सूक्ष्म शक्ति मन को अब तक पहचान नहीं पाया है।

वास्तविकता यह है कि जब हम एक विचार का निर्माण करते हैं, तब हम एक ऊर्जा का निर्माण करते हैं, सकारात्मक विचार, सकारात्मक ऊर्जा व नकारात्मक विचार नकारात्मक ऊर्जा का सृजन करती है। हमारे मन में बार-बार उठने वाले विचार भाग्य का निर्माण करते हैं।

हमारे विचार हमारी अनुभूतियों पर प्रभाव डालते हैं, हमारी अनुभूतियां भावनाएं बदलती हैं, भावनाएं दृष्टिकोण बदलती हैं। दृष्टिकोण का सीधा सा असर हमारे कार्यों पर होता है। बार-बार करने पर कार्य आदत बन जाते हैं और आदतें हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करती है और उसी से हमारा भाग्य का आधार बनता है।

विचारों का संबंध मन से है और मन का आत्मा से और आत्मा का अध्यात्म से सीधा संबंध है। विचारों का असंतुलन आध्यात्मिक असंतुलन कहलाता है। यह दैवी गुणों को अभाव का सूचक है, दैवी गुणों को अभाव का असर मानसिकता पर होता है। मानसिकता से शरीर के अंदर अहम कार्य करने वाले रसायनों के निर्माण प्रभावित होता है। नकारात्मक विचार इन रसायनों के निर्माण में जो संतुलन होना चाहिए, उसे बिगाड़ने का कार्य करते हैं, जबकि सकारात्मक विचार इन रसायनों को आवश्यक मात्रा में निर्मित होने में सहायक होते हैं।

रसायनों को निर्माण में असंतुलन हर एक का शरीर अलग-अलग समय तक सहन करता है। उसके बाद वह रोग बनकर शरीर पर अपने लक्षण प्रकट करता है, अत: बीमारी का उपचार करने के पूर्व रोगी के मन की भावनाओं को, उसके भूतकाल को जानना जरूरी है क्योंकि बीमारी किसी न किसी दुर्भावना या दैवी कारण का अभाव में ही छिपा होता है। भावनाओं के भूतकाल को जानने का प्रयास हमें उन नकारात्मक भावनाओं या दैवी गुणों के अभाव को ज्ञात कराता है जो बीमारी का मूल कारण बने हुए हैं। क्योंकि कुछ घटनाएं और उनके द्वारा मन में उत्पन्न होने वाले विचार , भावनाएं ही साध्य बीमारियों को असाध्य बनाती हैं।

कुछ बीमारियों के कारण वर्तमान जन्म या पूर्व जन्म में हुई कोई घटना तथा इससे मन में उत्पन्न हुए विचार भी हो सकते हैं। अत: इस प्रकार की बीमारियों को ठीक करने के लिए अब तक सम्मोहन शास्त्र ही काम आता था लेकिन अब साइकोन्यूरोबिक्स इसमें अधिक कारगर सिद्ध हुआ है। इसमें नकारात्मक विचारों के निर्माण से उत्पन्न बीमारियों को सकारात्मक विचारों से, तथा दैवी गुणों की धारणा से ठीक किया जाता है। इसमें राजयोग विधि सबसे अधिक मददगार बनती है।

राजयोग विधि का केंद्र बिंदु है मन और मन द्वारा निर्मित विचार। विचार को कर्म बीज कहा जाता है, वह हमारे भाग्य का निर्माण करते हैं। वर्तमान में आई हुई भोगना या सुख हमारे पूर्व में किए गए कर्मों की तरफ इशारा करते हैं। हमारी बुद्धि या हमारा विवेक मन के विचारों को कर्म द्वारा प्रत्यक्ष करने का काम करते हैं। विकारों को वशीभूत होकर किया गया कर्म विकर्म कहलाता है, जो नकारात्मक प्रभाव ही उत्पन्न करता है और जीवन में दु:ख ले आता है। ज्योतिष शास्त्र में इसे ग्रहों की विपरीत दशा कहा जाता है, उसे सुधारने के लिए, प्रभाव को सौम्य बनाने के लिए कर्मकांड करने की सलाह दी जाती है। मान्यता है कि इसके द्वारा दुखों का शमन बताए गए कर्मकांड पर तथा करने वाले की आस्था एवं विश्वास पर निर्भर करता है।

राजयोग के अंतर्गत जब हम स्वयं को आत्मा समझ परमज्योति परमात्मा से स्मृति द्वारा संबंध स्थापित करते हैं तो आत्मा को जिस ऊर्जा प्राप्ति का अनुभव होता है उसे योग अग्नि कहा जाता है। हम अपने विकर्मों को इस अग्नि द्वारा भस्म कर सकते हैं। इस योग अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए स्वयं का, परमात्मा का, सृष्टिचक्र के संपूर्ण ज्ञान एवं परमात्मा द्वारा प्रदत्त दिव्य विवेक का होना आवश्यक है। साथ ही साथ कुछ परहेज भी आवश्यक है। सबसे पहला परहेज है कि जो गलती हमसे हुई है उसे पुन: नहीं दोहराना है। राजयोग के दोहरे फायदे होते हैं। एक तो यह कि हमारे पूर्व के विकर्म खत्म होते हैं और दूसरा यह कि वर्तमान तथा भविष्य में हमसे कोई विकर्म नहीं होता।

अनुवाद: निलेश भाई

पृष्ठ 7 का शेष...

अगर विश्वसनीयता पर ध्यान केंद्रित किया जाए। अगर कोई आप पर विश्वास नहीं करता तो आपको बहुत बुरा महसूस होता है। एक ऐसा वातावरण तैयार होता है जो न तो आपके लिए अच्छा है न दूसरों के लिए। कोई भी समाज बिना मानवीय मूल्यों को आगे नहीं बढ़ सकता।

अब आप पूछ सकते है कि आत्म संदेह क्या है? आप दूसरों पर विश्वास करते हैं परंतु अपनेआप पर नहीं,यह भी उस बीमारी का दूसरा रूप है। अपने आप पर संदेह करते हैं तो दूसरों पर संदेह होता है। दूसरों पर से विश्वास उठने पर समाज के मूल्यों से भी विश्वास उठ जाता है और अपने आप से भी। इसको सही करने की जरूरत है और जो सही किया जा सकता है उसका अभिनंदन करना चाहिए। समाज व परिवारजन के बीच विश्वास होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह कहा जा सकता है कि तनाव ही अविश्वसनीयता का कारण है। हर कोई धोखेबाज नहीं होता, इस दुनिया में अच्छे लोग भी हैं। आज दुनिया कुछ गलत लोगों की वजह से खराब नहीं है, पर अच्छे लोगों की चुप्पी के कारण ये वातावरण बना हुआ है। अब इसको बदलना हमारे हाथों में है।

एक सच्चा नेता वह नहीं जो इस बात पर जोर दे कि वह नेता है और बाकी सबको उसके पीछे आना है। उसे एक प्रशिक्षक की तरह पानी में डूबकी लगाना सिखाना होगा, जब तक आप पानी में नहीं उतरेंगे, तैरना नहीं सीख पाएंगे। यह मार्गदर्शन आपके जीवन में आपके द्वारा ही लाया जा सकता है।

एक नेता को संभाषण करना ही होगा। इसलिए संवेदनशील दयावान बने। हमारे जीवन में जोश, निरपेक्षता व करुणा इन तीनों का महत्व होना चाहिए।

(ऋषिमुख)

सत्य, शिव और सौंदर्य की संस्कृति से भारतीय सभ्यता का विकास हुआ। स्वाभाविक ही इस सभ्यता में मर्यादा, कोमलता, माधुर्य और शील का आचार व्यवहार था। विदेशी सभ्यता के हल्ले-हमले ने इसका ताना-बाना तोड़ा। मर्यादा और शील के सुकोमल तंतु टूट गए। श्लील-अश्लील का फर्क मिट गया। कला और शिल्प यहां परमसत्ता के प्रकट रूप जाने गये थे। भारतीय चिंतन में प्रकृति स्वयं उसकी ही कला जानी गई थी। लेकिन पश्चिमी सभ्यता ने कला को कौशल बनाया। देह भारत में धर्म साधना का उपकरण थी, वही देह धर्मनिरपेक्ष हो गई। योग चित्तवृत्ति के पार की यात्रा है लेकिन साधना में देह ही उपकरण है।

देह दर्शनीय है प्रदर्शनीय नहीं

हृदयनारायण दीक्षित

शरीर हमारा व्यक्त भाग है। बाकी भीतर जो कुछ है, उसका भी बड़ा भाग शरीर ही है; सूक्ष्मतर भाग मन, प्रज्ञा, प्राण या आत्म। प्राण की पुलक भी देह में ही प्रकट होती है। प्राण का तेजस् ही देह का तेजस है। सौंदर्य भी देह पर ही प्रकट होता है लेकिन इसका केंद्र है प्राण। प्राण जीवन का मूलाधार है लेकिन देह में ही प्रकट होता हैं। दुनिया की सभी संस्कृतियों में सौंदर्यबोध है। भारतीय संस्कृति में सत्य, शिव और सुंदर एक साथ हैं। भारतीय सौंदर्यबोध मात्र भौतिक ही नहीं है, इस सुंदरता में शिवत्व है और नित्य सत्य भी। सत्य, शिव और सौंदर्य की संस्कृति से भारतीय सभ्यता का विकास हुआ। स्वाभाविक ही इस सभ्यता में मर्यादा, कोमलता, माधुर्य और शील का आचार व्यवहार था। विदेशी सभ्यता के हल्ले-हमले ने इसका ताना-बाना तोड़ा। मर्यादा और शील के सुकोमल तंतु टूट गए। श्लील-अश्लील का फर्क मिट गया। कला और शिल्प यहां परमसत्ता के प्रकट रूप जाने गये थे। भारतीय चिंतन में प्रकृति स्वयं उसकी ही कला जानी गई थी। लेकिन पश्चिमी सभ्यता ने कला को कौशल बनाया। देह भारत में धर्म साधना का उपकरण थी, वही देह धर्मनिरपेक्ष हो गई। योग चित्तवृत्ति के पार की यात्रा है लेकिन साधना में देह ही उपकरण है।

नृत्य सुंदरतम् देह अभिव्यक्ति है। श्रीकृष्ण का नृत्य भारत के मन तरंग में आज भी मौजूद है। शिव का नृत्य सृष्टि के कण-कण में गतिशील है। भारत के तमाम संत नाचते थे। नृत्य देह-धर्म की पराकाष्ठा है। प्राण ऊर्जा को देह पर लाना ही उत्कृष्ट नृत्य-धर्म है। नृत्य उत्सव है देह धर्म का। नृत्य देह से देह की यात्रा है लेकिन नृत्य में देह

धर्म की उपासना का चरम देह पर विदेह भी प्रकट कर देता है। राजा जनक को आदर में विदेह कहा गया है। विदेह यानी देह के पार- बियांड बॉडी। नृत्य में देह के पार की यात्रा नहीं होती, तब देह के पार का तत्व ही देह पर उपस्थित हो जाता है। नृत्य बेशक रूपक है लेकिन भीतर का अरूप भी सज-धज कर देह पर ही प्रकट हो जाता है। लेकिन ऐसे नृत्य के लिए देह- प्रदर्शन नहीं, देह-दर्शन की आवश्यकता है और देह दर्शन की अनुभूति धर्म में ही हो सकती है। धर्मनिरपेक्ष देह में नहीं। संप्रति देह साधना का उपयोग धर्म साधना में नहीं बाजार साधना में है। अब देह उपासना या प्रार्थना नहीं वासना का उपकरण है। राष्ट्र राज्य का पंथ निरपेक्षीकरण राजनीतिक विचार है और संवैधानिक भी, लेकिन देह का धर्मनिरपेक्षीकरण भारत को बहुत महंगा पड़ा है।

देह उपभोक्ता वस्तु नहीं है। वह दर्शनीय तो है, प्रदर्शनीय नहीं है। सिनेमा में भी कुछ तो है जो सबके लिए प्रदर्शनीय नहीं है। देर रात आने वाली ए-प्रमाण पत्र की फिल्में दिन में प्राय- नहीं दिखाई जातीं। समझ में नहीं आता कि कला का जो भाग दिन में भदेस है, अश्लील है; वह देर रात क्यों राष्ट्र हितैषी है? देह प्रदर्शन वाली कला या फिल्में बच्चों के लायक नहीं हैं, फिर वे बड़ों के लायक क्यों हैं? बच्चों-युवकों के लिए जो अश्लील है, वही हम सबके लिए क्यों अमृत संजीवनी है? देह का एक-एक कोष जीवनऊर्जा से भरापूरा है। देह सभी आकांक्षाओं की पूर्ति का उपकरण है। राजनेता माल्यार्पण से खुश होते हैं। मार्ल्यापण कराने के लिए सुव्यवस्थित शरीर चाहिए। भोगी के लिए तो और भी सुंदर देह चाहिए। विश्व की कोई भी वस्तु धर्म मुक्त नहीं है। पृथ्वी का धर्म विश्व धारण करना है इसीलए वह धरित्री है। अग्नि का धर्म ताप है, जल का धर्म रस प्रवाह है। देह का धर्म संसार साधना है। योग, ध्यान, भक्ति, पूजा या उपासना के लिए भी देह धर्म चाहिए। देह धर्मनिरपेक्षी नहीं हो सकती। देह-धर्म की भारतीय अवधारणा सुंदर है। भारत से भिन्न भौतिकवादी चिंतन में देह को शुद्ध भौतिक जाना गया है। यह बात उचित भी है लेकिन देह सिर्फ भौतिक पदार्थ नहीं है। वह प्राण ऊर्जा से भरी-पूरी जीवंत इकाई है। अपना-अपना गुणधर्म सभी तत्वों का वैशिष्ट्य है। देह का भी अपना गुण धर्म है। देह से धर्म घटाने पर देह वस्तु हो जाती है। कन्या, बिटिया, बहिन सिर्फ मॉडल हो जाती हैं। युवा देह का अपना स्वभाव, अपना धर्म है, यहां गति है, तेजस् है और सक्रियता है। बढ़ी उम्र की देह का अपना आनंद है, यहां स्थैर्य है, धीरता है, अनुभूति और यथार्थ आत्मबोध है। इसमें धर्म घटा दें तो कुछ नहीं बचता। देह का धर्मनिरपेक्षीकरण बड़ा खतरनाक है।

अक्लमंद हंस

एक बहुत बड़ा विशाल पेड़ था। उस पर बीसियों हंस रहते थे। उनमें एक बहुत स्याना हंस था, बुद्धिमान और बहुत दूरदर्शी। सब उसका आदर करके 'ताऊ' कहकर बुलाते थे। एक दिन उसने एक नन्ही-सी बेल को पेड़ के तने पर बहुत नीचे लिपटते पाया। ताऊ ने दूसरे हंसों को बुलाकर कहा 'देखो, इस बेल को नष्ट कर दो। एक दिन यह बेल हम सबको मौत के मुंह में ले जाएगी।'

एक युवा हंस हंसते हुए बोला 'ताऊ, यह छोटी-सी बेल हमें कैसे मौत के मुंह में ले जाएगी?'

स्याने हंस ने समझाया 'आज यह तुम्हें छोटी-सी लग रही हैं। धीरे-धीरे यह पेड़ के सारे तने को लपेटा मारकर ऊपर तक आएगी। फिर बेल का तना मोटा होने लगेगा और पेड़ से चिपक जाएगा, तब नीचे से ऊपर तक पेड़ पर चढ़ने के लिए सीढ़ी बन जाएगी। कोई भी शिकारी सीढ़ी के सहारे चढ़कर हम तक पहुंच जाएगा और हम मारे जाएंगे।'

दूसरे हंस को यकीन न आया 'एक छोटी सी बेल कैसे सीढ़ी बनेगी?'

तीसरा हंस बोला 'ताऊ, तू तो एक छोटी-सी बेल को खींचकर ज़्यादा ही लम्बा कर रहा हैं।'

एक हंस बड़बड़ाया 'यह ताऊ अपनी अक्ल का रौब डालने के लिए अंट-शंट कहानी बना रहा हैं।'

इस प्रकार किसी दूसरे हंस ने ताऊ की बात को गंभीरता से नहीं लिया। इतनी दूर तक देख पाने की उनमें अक्ल कहां थी?

समय बीतता रहा। बेल लिपटते-लिपटते ऊपर शाखों तक पहुंच गई। बेल का तना मोटा होना शुरू हुआ और सचमुच ही पेड़ के तने पर सीढ़ी बन गई। जिस पर आसानी से चढ़ा जा सकता था। सबको ताऊ की बात की सच्चाई सामने नज़र आने लगी। पर अब कुछ नहीं किया जा सकता था क्योंकि बेल इतनी मज़बूत हो गई थी कि उसे नष्ट करना हंसों के बस की बात नहीं थी। एक दिन जब सब हंस दाना चुगने बाहर गए हुए थे तब एक बहेलिआ उधर आ निकला। पेड़ पर बनी सीढ़ी को देखते ही उसने पेड़ पर चढ़कर जाल बिछाया और चला गया। सांझ को सारे हंस लौट आए पेड़ पर उतरे तो बहेलिए के जाल में बुरी तरह फंस गए। जब वे जाल में फंस गए और फडफडाने लगे, तब उन्हें ताऊ की बुद्धिमानी और दूरदर्शिता का पता लगा। सब ताऊ की बात न मानने के लिए लज्जित थे और अपने आपको कोस रहे थे। ताऊ सबसे रुष्ट था और चुप बैठा था।

एक हंस ने हिम्मत करके कहा 'ताऊ, हम मूर्ख हैं, लेकिन अब हमसे मुंह मत फेरो।'

दूसरा हंस बोला 'इस संकट से निकालने की तरकीब तू ही हमें बता सकता हैं। आगे हम तेरी कोई बात नहीं टालेंगे।' सभी हंसों ने हामी भरी तब ताऊ ने उन्हें बताया 'मेरी बात ध्यान से सुनो। सुबह जब बहेलिया आएगा, तब मुर्दा होने का नाटक करना। बहेलिया तुम्हें मुर्दा समझकर जाल से निकाल कर ज़मीन पर रखता जाएगा। वहां भी मरे समान पडे रहना। जैसे ही वह अन्तिम हंस को नीचे रखेगा, मैं सीटी बजाऊंगा। मेरी सीटी सुनते ही सब उड जाना।'

सुबह बहेलिया आया। हंसों ने वैसा ही किया, जैसा ताऊ ने समझाया था। सचमुच बहेलिया हंसों को मुर्दा समझकर ज़मीन पर पटकता गया। सीटी की आवाज़ के साथ ही सारे हंस उड गए। बहेलिया अवाक होकर देखता रह गया।

(पंचतंत्र की कहानी)

म.शु.

जीत का स्वाद भी जाता रहा
हार का स्वाद भी जाता रहा
मंजिले मौज मिलती कहाँ हैं
हर भरोसा कहर ढाता रहा।

रमाशंकर शुक्ल

...तो 'वह' भी आपके साथ है

अनुभव

इस्पात और उर्जा के उत्पादन तथा प्रबंधन के उत्तरदायी पदों से जुडे नीलोत्पल राय अपने अनुभवों के आधार पर अब यह मानते हैं कि मन का अचल और अडोल होना, उसका शांत तथा विचलन रहित स्थिति में बने रहना किसी भी तरह के प्रबंधन के लिये आवश्यक है। ऐसी स्थिति में ही व्यक्ति चुनौतियों का सामना कर पाता है और अपने गतिमान तथा नवाचारी कार्य से संस्थान तथा अपनी प्रगति करते हुए उपलब्धियां प्राप्त करता है। उन्होंने यह सब अपने जीवन में, कार्य के दौरान और अपने संबंधों का निर्वाह करते हुए अनुभव किया है। यह भी संयोग ही है कि उनकी पत्नि सुष्मिता राय भी सकारात्मकता और विकार रहित जीवन को श्रेयस्कर मानती और व्यवहार करती हैं। श्री नीलोत्पल राय तो कहते हैं कि जीवन में दिव्यता का अनुभव उन्हें ज्यादा है और वे तो यह भी मानती है कि भगवान सचमुच ही हमारा साथी है और वह मुसीबत में हमारी मदद करता है।

श्री राय का जन्म कोलकाता में 14 नवम्बर 1948 को हुआ। वे दुर्गापुर तथा कोलकाता में शिक्षित हुए और वहीं से इंजीनियरिंग में पोस्ट ग्रेजुएट होकर दुर्गापुर स्टील प्लांट, इंडियन आयरन एण्ड स्टील कारपोरेशन जैसे बड़े उद्योगों में प्रबंध तथा कार्यपालन निदेशक जैसे बड़े पदों पर कार्य करते रहे हैं। चौंसठ वर्ष की उम्र में भी वे अभी न तो थके हैं और न हारे हैं। सेवा से मुक्त होकर अब रायगढ़ के मेनेट इस्पात एण्ड इनर्जी लिमिटेड में कार्यपालन निदेशक हैं।

श्री राय से मुलाकात एक आध्यात्मिक सत्संग के दौरान हुई और बातों का सिलसिला वहीं से प्रारंभ हुआ। उनसे जानना चाहा कि वे विज्ञान और टेक्नालाजी के व्यक्ति हैं जो प्रत्यक्ष अनुभव और तर्क का विश्वासी होता है। फिर वे यहां कैसे? उन्होंने कहा कि वे सचमुच ही अंधविश्वास और अंधश्रद्धा को नहीं मानते हैं। पर प्रत्यक्ष हुए अनुभवों और उनके जीवन तथा व्यवहार में आये परिवर्तनों से इनकार कैसे करें। उनके अनुसार धर्म और अध्यात्म में फर्क यह है

नीलोत्पल राय

एक यूरोप के विद्वान ने भी यही कहा कि यह सही नहीं है कि डांट-फटकार से ज्यादा काम होता है। आत्मीय संबंधों से जिसमें प्रेम का भाव होता है, अधिक काम लिया जा सकता है। अपने अनुभवों की याद करते हुए वे बता रहे थे। मुझे बहुत क्रोध आता था। एक तरह से आप कह सकते हैं कि मैं अपनी काबलियत के साथ ही अपने क्रोध के लिए घर में और आफिस में जाना जाता था। क्रोध मुझे बहुत स्वाभाविक लगता था। आपके अनुसार किसी ने काम नही किया हो तो आप क्या करेंगे। क्रोध आयेगा ही। पर अब अपने ही पुराने व्यवहार पर हंसी आती है। यहां आकर मेरा क्रोध कपूर की तरह काफूर हो गया है। पूरी तरह से पुरानी धारणा बदल हीं गई है।

कि धर्म प्राय: अंधश्रद्धा पर आधारित होता है जबकि अध्यात्म अनुभव और तर्क पर। इसीलिए आप अध्यात्म को अतार्किक नहीं कह सकते। इन अनुभवों और तार्किक स्थापनाओं, विचारों के कारण ही तो वे इस ओर आकर्षित हुए हैं। वे कहते हैं - बताईये क्या यह कहना अतार्किक है कि अपने विकारों को समाप्त करो या सुख पाना है तो ऐंद्रिक कामनाओं को छोड़ो। परमात्मा के ज्ञान के बारे में तो उन्हें ऐसे ही अनुभव हुए हैं जो उनके जीवन में आये बदलाव का आधार भी हैं।

अपने अनुभवों को एक-एक करके बताते हुए वे कहते हैं -आप विश्वास मानिये, हमारा काम करने के तरीका बदल गया है। पहले मैं बहुत सिगरेट पीता था और मानता था कि यह हमारे निर्णय लेने में मददगार है। अध्यात्म से जुड़ने से यह तो छूट ही गया और इसके साथ ही यह भ्रम भी टूट गया कि यह निर्णय की शक्ति है। अब मेरे निर्णय करने का शक्ति पहले की तुलना में बहुत बढ गई है। पहले मैं सोचता था कि जिससे काम लेना है तो उससे कुछ जोर से, डांटते हुए ही बोलना पड़ेगा और ऐसा ही करता था। पर अब यह गलत लगता है और मजे की बात तो यह है कि अब लोग प्रेम के कारण ज्यादा काम कर पाते हैं। ऐसा अनुभव मेरे अकेले का नहीं है और न केवल ऐसा भारत में ही होता है। दुनिया भर में प्रबंधकों का ऐसा अनुभव है। अभी पिछले दिनों ही मैं एक कार्यक्रम में था। वहां आये एक यूरोप के विद्वान ने भी यही कहा कि यह सही नहीं है कि डांट-फटकार से ज्यादा काम होता है। आत्मीय संबंधों से जिसमें प्रेम का भाव होता है, अधिक काम लिया जा सकता है। अपने अनुभवों की याद करते हुए वे बता रहे थे। मुझे बहुत क्रोध आता था। एक तरह से आप कह सकते हैं कि मैं अपनी काबलियत के साथ ही अपने क्रोध के लिए घर में और आफिस में जाना जाता था। क्रोध मुझे बहुत स्वाभाविक लगता था। आपके अनुसार किसी ने काम नही किया हो तो आप क्या करेंगे। क्रोध आयेगा ही। पर अब अपने ही पुराने व्यवहार पर हंसी आती है। यहां आकर मेरा क्रोध कपूर की तरह काफूर हो गया है। पूरी तरह से पुरानी

धारणा बदल ही गई है।

आप कहते हैं कि भगवान आपके साथ होता है और आपके की कठिनाई के समय आपकी मदद करता है। यह केवल सुना विचार है या इस बारे में भी कोई अनुभव है? ऐसा उनसे पूछने पर वे बताने लगे -इस बारे में मेरा एक अनोखा और प्रत्यक्ष अनुभव है। जब मैं इंडियन आयरन स्टील कारपोरेशन के स्टील प्लांट का प्रबंध निदेशक था। उस समय उसकी स्थिति ठीक नहीं थी। मुझे लगता था कि उसका आधुनिकीकरण किया जाये तो ही वह तरक्की करेगा। पर उस मामले में अब ऐसा निर्णय लेना आसान नहीं था। जब वह प्रारंभ हुआ था उसकी लागत 4400 करोड़ की थी जो अब बढ़कर 14000 करोड़ हो चुकी थी। उसके आधुनिकीकरण में बहुत पैसा खर्च होने वाला था। उस समय उसके निदेशक मंडल में वहां 22 निदेशक थे। उनमें 12 सरकार के और 10 कारपोरेशन के थे। जब मैंने अपना यह प्रस्ताव रखा तो उसका जबदस्त विरोध हुआ। मुझे लगता था कि आधुनीकीकरण के बिना उसकी प्रगति नहीं हो सकती है और निदेशक मंडल के अधिकतर सदस्य यह नहीं मान रहे थे। लोगों को संदेह था कि इतना पैसा लगाना बुध्दिमत्ता होगी क्या। और क्या इस सबसे जैसा कहा जा रहा है वैसा हो पायेगा। उनको भरोसा नहीं हो रहा था। वे मेरे विरोधी नहीं थे पर उनको यह जोखिम उठाना लाभदायक नहीं लग रहा था।

बैठकें होती और नतीजा कुछ नहीं निकलता था। पर मुझे लगता था कि यही एक मार्ग है उसकी प्रगति का। मैं परेशान भी था और मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं उन्हें कैसे विश्वास दिलाऊं। एक दिन मेरी पत्नी ने मुझसे कहा कि आप जब जायें तो अपने साथ परमात्मा को भी रखें और उससे कहें कि अब तुम ही इन्हें समझाओ। मेरे लिए यह एक नया आयाम था अध्यात्म का। आप भरोसा कीजिये कि जब मैंने ऐसा किया तो उस समय मैंने ऐसा कुछ कहा कि जिसको सुनकर उन सभी ने उस प्रस्ताव को मान लिया। मुझे अब इस समय यह याद नहीं आ रहा है कि मैंने उस समय क्या कहा था पर उस समय जो बोला था, वह लोगों को ठीक लगा। उस समय वह बोलने में उस परमात्मा की मदद थी। अब उसी के अनुसार काम हो रहा है।

नीलोत्पल तथा सुष्मिता

यह इस बात की गवाही है कि आप उसे अपने साथ रखें तो वह आपके साथ होता है और आपकी मदद करता है। उनका संदेह था और मेरा आत्मविश्वास था। यह एक तरह से मेरे आत्मविश्वास का भी परीक्षण था।

हां, यह जरूर है कि यह सब तब होता है जब संदेह से परे आपका उसमें निश्चय हो और आप उसे मानते हों। वे बता रहे थे। उन्होंने बताया कि उनकी पत्नी भी अध्यात्म के मार्ग पर चलती हैं और उनका विश्वास और निश्चय मुझसे भी अधिक गहरा है। इससे सबंधों में भी फर्क पड़ता है, यह पूछने पर वे बताने लगे कि संबंधों में तो बिल्कुल फर्क पड़ता है पर यह सब आपके नजरिये पर भी निर्भर है। आप दूसरे के बारे में किस तरह से सोचते हैं। उनके बारे में आपका नजरिया क्या है। यह उसी तरह का प्रभाव पैदा करता है। आप उनसे नफरत नहीं करते हैं, मानते हैं कि उनका भी अपना नजरिया है, उससे वे उस समय उस तरह का व्यवहार कर रहे हैं, तो संबंध बिगड़ते नहीं है। इस पर एक अनुभव बताया। उन्होंने बताया कि एक समय उनके पास बहुत गुस्से से भरे हुए यूनियन के कुछ नेता कर्मचारियों के बारे में अपनी मांग लेकर आये। मैंने उन्हें धीरज और शांति से सुना और मन में माना कि यह उनका नजरिया है। सबको लग रहा था कि वे उस समय कुछ आक्रामक व्यवहार करेंगे। पर ऐसा कुछ हुआ नहीं। वे मेरी बात मानकर चले गये। बाद में उनमें एक नेता ने मुझे आकर खुद बताया कि वे आज बहुत क्रोध में आये थे पर आपकी आंख को देखकर चुप हो गये और वापिस आ गये। यह सब मेरा उनके बारे में जो नजरिया और सोच था तथा जिस प्रेम भाव से मैं उन सबको देख रहा था, उसका ही प्रभाव था। मैं उनको जबाबदार मान रहा था इसीलिए परिणाम कुछ और ही हुआ।

वे ब्रम्हाकुमारीज के ज्ञान में दस वर्षों से हैं और इन दस वर्षों में बहुत कुछ बदल गया है। व्यसन विकार छूट गये। जीवन को जीने का ढंग बदल गया। दूसरों के साथ संबंधों में मैत्री भाव बढ गया। ऐसा नहीं है कि अब क्रोध नहीं आता या कभी कभार स्वर उंचा नहीं होता पर यह होते ही याद आ जाता है कि यह गलत हुआ है।

आपके बारे में दूसरे और खासकर आपके साथी-सहयोगी या सहपाठी क्या सोचते हैं?

उन्होंने कहा- दूसरे क्या सोचते हैं, यह तो क्या कह सकता हूं और यह कहूं कि वे तारीफ करते हैं तो यह आत्मश्लाघा होगी। पर हां यह अनुभव किया है कि वे मेरे पास बहुत केजुअल या लापरवाह होकर नहीं आते हैं। वे जानते हैं कि उनकी स्वाभाविक गलतियां या अज्ञानता को उतना बुरा नहीं माना जायेगा जितना लापरवाही और गैर जबाबदारी को माना जायेगा। इसीलिए कुछ सावधान होकर आते हैं। और अपने बारे में अब वे निर्भय होकर सच बोलते हैं।

- प्रो कमल दीक्षित

विभाज्य व्यक्तित्व विकार ऐसा मनोवैज्ञानिक विकार है जिसमे अक्सर लोग अपनी शख्सियत भूल जाते हैं। इस विकार में व्यक्ति की मन:स्थिति उसके नियंत्रण में नहीं रहती व्यक्ति अपने व्यक्तिगत संबंधों में बहुत ही अनिश्चित हो जाता है। उसे अचानक गुस्सा आता है, तो कभी वो भावशून्य हो जाता है या फिर कभी-कभी वो बिना किसी कारन स्वयं में परित्याग की भावना महसूस करता है।

वो ऐसा क्यों है ?

ममता व्यास

हम दिन भर में कई लोगों से मिलते हैं उनसे बातें करते हैं और उनके बारे

में एक राय कायम करते हैं। वो बहुत खुशमिजाज इंसान है या वो एकदम बोरिंग है या वो महिला बड़ी जिंदादिल है या वो बड़ी रोनी सूरत है। ये हम सभी के व्यक्तित्व के प्रकार हैं। लेकिन कभी-कभी हम अपने आसपास ऐसे लोगों से भी मिलते हैं जिनके बारे में आप कोई राय नहीं दे सकते, इन लोगों का व्यक्तित्व विचित्र होता है ऐसे लोगों के बारे में कुछ नही कहा जा सकता। उदाहरण के लिए मिस्टर शर्मा जब तक अपने ऑफिस में काम करते हैं तब तक वो एक जिम्मेदार आफिसर की तरह बिहेव करते हैं और घर पर आते ही वो एक हिंसक, गुस्से वाले व्यक्ति में बदल जाते हैं। उनकी पत्नी और बच्चे बस इस बात के गवाह होते हैं। ऑफिस में उनकी छवि एक शांत और कोमल व्यक्ति की है घर आते ही बात उलट जाती है। इसी तरह मिस जेनिफर जो पेशे से एक टीचर थी जब वो क्लास लेती हैं तो बहुत ही प्यार से और आत्मीय होकर छात्रों को पढ़ाती थी हमेशा हंसाने मुस्काने वाली ये जिंदादिल टीचर एक दिन अपने ही घर में मरी हुई पायी गयी। उन्होंने अपने सुसाइड नोट में लिखा दुनिया को खुशिया बाँटते-बाँटते मैं थक गयी अब मैं सोना चाहती हूँ हमेशा के लिए..... बहुत दिनों तक लोगों ने विश्वास नहीं किया कि हमेशा खुश रहने वाली महिला यूँ कमजोर होकर मौत को गले लगाएगी ।

दरअसल, दोनों उदाहरणों में दोनों लोग एक मानसिक बीमारी के शिकार हैं। उनके व्यक्तित्व के दो रूप हैं, दो छवि है उनका चित्त स्थिर नहीं रहता और ऐसे में मरीज अवसाद में चला जाता है । इस रोग को बी.पी.डी. यानी बार्डर लाइन पर्सनालिटी डिसआर्डर कहते हैं। इस रोग में व्यक्ति का व्यक्तित्व विभाज्य हो जाता है।

विभाज्य व्यक्तित्व विकार ऐसा मनोवैज्ञानिक विकार है जिसमे अक्सर लोग अपनी शख्सियत भूल जाते हैं। इस विकार में व्यक्ति की मन:स्थिति उसके नियंत्रण में नहीं रहती व्यक्ति अपने व्यक्तिगत संबंधों में बहुत ही अनिश्चित हो जाता है। उसे अचानक गुस्सा आता है, तो कभी वो भावशून्य हो जाता है या फिर कभी-कभी वो बिना किसी कारन स्वयं में परित्याग की भावना महसूस करता है।

अमेरिकन साइकेट्रिस्ट एसोसिएशन के अनुसार आज लगभग 2 प्रतिशत जनसंख्या बी.पी.डी. यानी बार्डर लाइन पर्सनालिटी डिजार्डर की शिकार हैं. इस बीमारी से ग्रसित मरीज अपनी संवेदनाओं पर नियंत्रण खो देते है, कभी-कभी वे लम्बे समय तक शांत रहते है और समझदारी वाला व्यवहार करते है तो कभी जिम्मेदारियों से बचने के लिए बचाव के तरीके अपनाते हैं। उदाहरण के लिए किसी सामान को तोड़ना, किसी पर जोर से चिल्लाना आदि। ऐसा करते समय वे दूसरों का अवमूल्यन करते हैं कभी-कभी ऐसे मरीज बचाब के अन्य तरीके भी अपनाते हैं जैसे प्रोजेक्टीव आइडेंटी-फिकेशन ये ऐसी स्थिति है जब मरीज अपने अहसासों को भी नहीं पहचानना चाहता उसके मन में उठ रहे भाव या अहसासों को सिरे से ख़ारिज करता जाता है। उसे लगता है कि वो सही कर रहा है ऐसा करते समय वो कई तरह के बहाने भी बनाता है ।

ये रोग पुरुषों की तुलना में महिलाओं को ज्यादा होता है। 75 प्रतिशत महिलायें इस बीमारी की शिकार हैं । इस रोग के मरीज अक्सर लम्बे समय तक इम्पल्सिव होते हैं। उनकी भावनाएं तीव्र गति से बदलती हैं। अभी आज वो हंसते हुए दिखेंगे और अगले ही पल उदासी में डूबे।

अभी मूड ठीक तो अभी खराब बार-बार मूड चेंज होना इस बीमारी के लक्षण हैं।

अगर ये रोग युवावस्था में हो जाए तो उम्र ढलने के साथ ठीक हो भी सकता है लेकिन यदि यह 30-40 वर्ष की उम्र में हो जाये तो इलाज बहुत जरुरी हो जाता है। बी.पी.डी. के होते ही 'मूड डिसआर्डर' तथा डिप्रेशन जैसी समस्या साथ चली आती हैं। अक्सर हम अपने आसपास ऐसे लोगों को देखते हैं जो अक्सर परेशान रहते हैं, हमेशा नकारत्मक सोच रखते हैं उनकी बातें हमेशा उलझी हुई सी रहती हैं। किसी से बात करते समय वो कब किस बात पर भड़क जाए कोई नहीं जानता। किसी की सहज सी बात पर ये रोगी तूफान खड़ा सकते हैं और खुद भी परेशान होते हैं। इन्हें अपना खुद का बिम्ब ही बदलता सा दिखता है कभी आवेग में आकर सबकुछ मिटा देने की बात करते हैं या खुद को ही मिटा देने की बात करते हैं। आये दिन होने वाली हत्या और आत्महत्या के पीछे यही रोग काम करता है रोगी गुस्से में खुद को या किसी दूसरे को चोट पहुंचाता है और फिर पछतावा करता है।

इस रोग का पता तब ही चलता है जब आप रोगी के साथ लम्बे समय तक संपर्क में रहें और उसके बर्ताव को देखें। इस रोग में रोगी बहुत आवेग आवेश में होता है और उसका ये आवेग कुछ स्थितियों में होता है जैसे सेक्स, मादक पदार्थों का सेवन, लापरवाही से गाड़ी चलाना खुद को चोट पहुँचाना, खाली-खाली महसूस करना, गुस्से पर नियंत्रण न होना आदि।

अक्सर रोगी खुद के बारे में कुछ इसतरह के विचार रखता है 'मैं दुनिया के लायक नहीं हूँ, किसी का प्रिय नहीं हूँ, मेरा रंग रूप बिगड़ गया है, सब मुझसे बिछड़ गए हैं दुनिया की कोई खुशी मुझे खुश नहीं कर सकती, मुझे ये जीवन खत्म कर देना चाहिए या इस दुनिया को ही खत्म कर देना चाहिए। ऐसे सैकड़ों विचार एक साथ रोगी के मन में आते-जाते रहते हैं।

बी.पी.डी. की चिकित्सा के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक साइको थेरेपी दी जाती है। इसमे काग्निटिव बिहेवियर थेरेपी सबसे कारगर होती है। ये थेरेपी मरीज के अनुभव और उसके दूसरे लोगो के साथ रिश्तों पर निर्भर करती है।

मरीज को उसके व्यवहार पर नियंत्रण सिखाया जाता है। साथ ही दवाओं के जरिये मरीज के बिगड़े मूड को ठीक किया जाता है। इस सबके वावजूद मेरा मानना है कि मरीज के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार, आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध रखना बहुत जरुरी होता है। उसे उसके अच्छे होने का अहसास करवाया जाये, उसके साथ बातचीत की जाये, वह किसी के लिए महत्वपूर्ण है, ये जताया जाए। ऐसे व्यवहार से मरीज बहुत जल्दी सामान्य हो जाता है। याद रखिये हर मानसिक या शारीरिक बीमारी पहले मन में जन्म लेती है। इसलिए मन को समझना ज्यादा जरुरी है। किसी के दु:ख या पीड़ा को उसी के स्तर पर जाकर समझने की कला से हम किसी के दु:ख को हम हल्का कर सकते हैं और उसके उदास चेहरे पर एक सुन्दर मुस्कान ला सकते हैं। अब किसी के भी बारे में कोई राय बनाने से पहले मनोविज्ञान की नजर से ये जरुर जान लें की वो ऐसा क्यों है?

कछुए की भक्ति

यह कहानी है एक कछुए की है जो प्रभु की भक्ति करना चाहता था।

उसने प्रभु चरणों की महिमा सुनी और उन चरणों मे जाना चाहा। तो पूछने लगा सबसे - कहाँ जाऊं, कहाँ जाऊं ?

वह खोजता रहा, खोजता रहा - आखिर एक दिन उसे कोई भक्त मिला - जिसने उस नन्हे को अनन्त क्षीर सागर में जाने को कहा - और वहाँ की राह भी सुझाई। एक तो बेचारा ठहरा कछुआ - कछुए की चाल से ही चल पड़ा। चलते चलते - चलते चलते... सागर तट तक भी पहुँच ही गया- फिर तैरने लगा। बढ़ता गया - बढ़ता गया...

और आखिर किसी तरह से वहां पहुँच ही गया जहां प्रभु शेष शैया पर विश्राम कर रहे थे। शेषनाग जी उन को अपने तन पर सुलाए आनन्द रत थे और लक्ष्मी मैया भक्ति स्वरूप हो प्रभु के चरण दबा रही थीं।

कछुए ने प्रभु के चरण छूने चाहे - पर शेषनाग जी और लक्ष्मी जी ने उसे ऐसा करने न दिया - बेचारा तुच्छ अशुद्ध प्राणी जो ठहरा।

वह दु:खी होकर सोचने लगा कि प्रभु तो इतने दयालु को , फिर भी वे कुछ नही बोले।

बेचारा - उसकी सारी तपस्या - अधूरी ही रह गयी।

प्रभु सिर्फ मुस्कुराते रहे - और यह सब देखते नारद सोचते रहे कि प्रभु ने अपने भक्त के साथ ऐसा क्यों होने दिया?

समय किसी के लिए नही रुका और धीरे-धीरे गुज़रता रहा, एक जन्म में वह कछुआ केवट बना - प्रभु श्री राम रूप में प्रकटे, मैया सीता रूप में और शेष जी लक्ष्मण के रूप में प्रकट हुए।

प्रभु आये और नदी पार करने को कहा- पर केवट बोला - अगर तुम हमसे पैर धुलवाओगे, तो ही हम पार ले जायेंगे... कही हमारी नाव ही नारी बन गयी अहिल्या की तरह , तो मुझ गरीब के घर का गुज़ारा कैसे होगा। मेरे परिवार की तो रोटी ही छिन जायेगी और फिर शेष जी और लक्ष्मी जी के सामने ही केवट ने प्रभु के चरण कमलों को धोने, पखारने का सुख प्राप्त किया...

और समय गुज़रा...

कछुआ अब सुदामा हुआ - प्रभु कान्हा बने, मैया बनी रुक्मिणी और शेषनाग जी बल दाऊ रूप धर आये।

दिन गुज़रते रहे - और एक दिन सुदामा बना वह नन्हा कछुआ - प्रभु से मिलने आया।

धूल धूसरित पैर, कांटे लगे, बहता खून , कीचड़ साने हुआ ... और फिर प्रभु ने अपने हाथों अपने सुदामा के पैर धोये , रुक्मिणी जल ले आयीं, और बलदाऊ भी वहीं बालसखाओं के प्रेम को देख आँखों से प्रेम अश्रु बरसाते खड़े रहे...

सच ही है हरि की लीला अपरम्पार है और उनकी कथा अनंत है...

(पुराण की एक कथा)

मं.शु.

लक्ष्य तथा साधन

स्वामी जगदात्मानंद

एक बार स्वामी विवेकानंद ने कहा था- अपने जीवन में मैंने जो श्रेष्ठता पाठ पढ़े हैं, उनमें से एक यह है कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सजग रहना चाहिए जितना कि उसके साध्य के विषय में। जिनसे मैंने यह बात सीखी वह एक महापुरुष थे। यह महान सत्य स्वयं उनके जीवन में प्रत्यक्ष रूप से परिणत हुआ था। इस एक सत्य से मैं सदा बड़े-बड़े पाठ सीखता रहता हूं और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्व में है। साधनों पर भी उतना ही ध्यान देना जरूरी है जितना की साध्य पर।

हमारे जीवन में एक बड़ा दोष यह है कि हम आदर्श से ही इतना अधिक आकृष्ट रहते हैं, लक्ष्य ही हमारे लिए इतना अधिक आकर्षक होता है, ऐसा मोहक होता है और हमारे मानस क्षितिज पर इतना विशाल बन जाता है कि बारीकियां हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती हैं।

परंतु असफलता मिलने पर हम यदि बारीकी से उसकी छानबीन करें तो 99 प्रतिशत पाएंगे कि उसका कारण था- हमारा साधनों कीओर ध्यान न देना। हमें अपने साधनों को पुष्ट करने की और उन्हें पूर्ण करने की अवश्यकता है। यदि हमारे साधन बिलकुल ठीक हैं, तो साध्य की प्राप्ति होगी ही। हम यह भूल जाते हैं कि कर्म ही फल का जन्मदाता है, फल स्वत: उत्पन्न नहीं हो सकता। जब तक कर्म अभीष्ट, समुचित तथा सशक्त न हो, फलों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। एक बार हमने ध्येय को निश्चित कर लिया और उसके साधन पक्के कर लिए कि फिर हम ध्येय को लगभग छोड़ सकते हैं, क्योंकि हमें विश्वास है कि यदि साधन पूर्ण हैं तो साध्य प्राप्त होगा। जब कारण विद्यमान हैं तो कार्य की उत्पत्ति होगी ही, उसके बारे में विशेष चिंता की कोई आवश्यकता नहीं। यदि कारण के विषय में हम सावधान रहें, तो कार्य स्वयं संपन्न हो जाएगा। कार्य है ध्येय की सिद्धि और कारण है साधन। इसलिए साधन पर ध्यान देते रहना जीवन का एक बड़ा रहस्य है। '

एक बार प्रख्यात संगीतकार बीथोवन अपनी कला की एक प्रस्तुति के उपरांत अपने मित्रों एवं प्रशंसकों से घिरे ख़ड़े थे। उनकी अद्‌भुत कला पर सभी लोग विस्मय

विमुग्ध होकर उनकी ओर आंखे फाड़-फाड़ कर देख रहे थे। लोग आल्हाद से इतने अभिभूत हो गए थे कि उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकल रहे थे। वे सभी उनके संगीत की माधुरी में तन्मय हो गए थे। एक उत्साहित महिला ने उस गंभीर निस्तब्धता को भंग करते हुए कहा - अहा! यदि ईश्वर ने मुझे संगीत की ऐसी असाधारण क्षमता दी होती..!

बीथोवन ने उत्तर दिया - क्या आपका कहना है कि मुझे यह असाधारण गुण ईश्वर ने दिया है ? याद रखना तुम्हें भी यह उपहार मिल सकता है। जानती हो कैसे ? 40 वर्षों तक प्रतिदिन आठ घंटे प्यानो पर अभ्यास करो, बस इतना ही काफी है। फिर तुम मेरे जैसी हो जाओगी। सही मार्ग हमें लक्ष्य तक अवश्य पहुंचाता है- क्या यह घटना किसी शाश्वत सिद्धांत की पुष्टि नहीं करती?

प्रसिद्ध संगीतशास्त्री वासुदेवाचार्य ने अपने संस्मरणों में कृष्ण अय्यर नाम के एक महान वायलिन वादक की अपूर्व उपलब्धियों के बारे में बताया। कृष्ण अय्यर की वायलिन कुशलता का आचार्य ने एक उदाहरण दिया है। कृष्ण अय्यर एक बार संगीत कार्यक्रम में वायलिन पर संगत कर रहे थे, तभी अचानक वायलिन का तार टूट गया, गायक ने उसकी ओर इस दृष्टि से देखा मानो कह रहे हो ठीक से संगत न कर पाने के कारण तुमने जानबूझ कर तार तोड़ दिया। कृष्ण अय्यर के मन में तीक्ष्ण प्रतिक्रिया हुई और वे बोले- क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे साथ संगत करने के लिए मुझे चार तारें चाहिए? देखो मैं अन्य तारों को भी निकाल देता हूं। उन्होंने वायलिन एक ही तार से बजाया और भलीभांति गायक की संगत की।

इस घटना से यही निष्कर्ष निकलता है कि ऐसी विलक्षण प्रतिभा के पीछे वर्षों का निष्ठापूर्ण, सतत और अथक अभ्यास रहता है। कोई भी महान व्यक्ति आरंभ से ही महान नहीं हुआ करता और कोई जन्म से ही प्रतिभाशाली भी नहीं होता। अधिकांश महान लोगों ने निरंतर प्रयास तथा अभ्यास के द्वारा ही महानता की उपलब्धि को प्राप्त किया। यदि मार्ग का चुनाव ठीकठाक हुआ हो तो सफलता अवश्यसंभावी है। सामान्यत: हम क्या करते हैं? हम लक्ष्य के विषय में बारंबार सोचते हैं, जल्दबाजी में साधन चुन लेते हैं, शक्ति अपव्यय कर देते हैं और आखिरकार निराश हो जाते हैं। जब जैसे नीतिकथा की लोमड़ी ने अंगूरों को अपनी पहुंच से दूर जानकर उन्हें खट्टा कहा था, वैसे ही हम भी अपनी असफलता के लिए लक्ष्य को दोषी ठहराने लगते हैं। कम से कम अब तो हमें सही मार्ग को अपना लेना चाहिए और यही लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में लगभग आधी उपलब्धि है।

(जीना सीखो)

आपने कहा है

सुखद अनुभव

आज होली है। मेरे जीवन में शायद यह पहली बार है कि बाहर लोग होली खेल रहे हैं और मैं घर बैठा हुआ हूं। आज मैंने कम्प्यूटर पर अपने कुछ दिनों से आए ई-मेल देखने थे क्योंकि सभी ई-मेल आवश्यक नहीं होते इसलिये उनको हटाने में ही अच्छा था।

मैं वैल्यू एजुकेशन एंड स्प्रिच्यूलिटी में ब्रह्माकुमारी एजुकेशन विंग द्वारा अन्नामलाई विश्वविद्यालय से एम.एस.सी. कर रहा हूं और इस पूरे सप्ताह कोर्स पांच के अंतर्गत मुझे आत्मनिरीक्षण करना है। सुबह-सुबह मेडिटेशन किया, बहुत अच्छा लगा। स्वयं के अंदर झांककर अपनी शक्तियों और कमियों पर गौर किया। मुझे लगा कि मैं बाहर तो सबसे अच्छी तरह से पेश आने की कोशिश करता हूं परंतु घर में मुझे कभी-कभी क्रोध आता है और इसका कारण मेरे घर वालों प्रति मेरा मोह है। साथ ही मेरे घर वाले भी यह कहते हैं कि मैंने पिछले सात-आठ माह में (जब से राजयोग मेडिटेशन कोर्स किया है) काफी बदल गया हूं, जो एक अच्छी बात है।

दोपहर के भोजन पश्यात थोड़ी देर सोया और जब उठा तो शिव बाबा की याद आई और सुबह के अनुभव का ख्याल आया। फिर मैंने अपना मोबाइल फोन उठाया और होली के एस.एम.एस. देखने लगा।

मेरे मोबाइल में शिव बाबा के गीत भी है और फिल्मी गाने भी। एसएमएस देखने के बाद मैंने मोबाइल रखा ही था कि गीत बजने लगा 'मेरे परमपिता परमात्मा, सदाशिव निराकार ओ आनंद के सागर, तेरी महिमा अपरंपार...'

मैं हैरान हो गया। मेरी युगल साथ में ही थी उसको भी आश्यर्च हुआ। मैंने मोबाइल चैक किया तो पाया कि यह गीत न तो श्रंखला के प्रारंभ में है और न ही अंत में, बीच में है। यह कॉलर ट्यून भी नहीं है। तो फिर वह गीत क्यों और कैसे बजा?

मैं आमतौर पर एकांत में वैसे भी यह गीत गुनगुनाता रहता हूं। यह मेरा फेवरेट गीत है लेकिन मोबाइल पर इस गीत का अचानक बिना किसी बटन दबाए बजने का यही कारण लगा कि बाबा ने मुझे आज के निद अपना आशीर्वाद दिया है।

आज होली के दिन का यह मेरे जीवन का सबसे सुखद व आनंदमय अनुभव रहा।

कर्नल कमलजीत चुघ (सेवानिवृत्त), श्रीनगर एक्सटेंशन, इंदौर

पृष्ठ 2 का शेष...

एक चट्टान पर बैठ प्रकृति के भावलोक में डूबे रहे। पास में बैठा भतीजा कवच, किलक और अर्गला का पाठ सस्वर कर रहा था। अचानक ध्यान टूटा। पूछा, माँ को क्यों परेशान कर रहे हो। क्या तुम्हारी नौकरानी है वह? आदेश पर आदेश दिए जा रहे हो कि 'रूपं देहि, जयं देहि यशो देहि द्विषो जही।' एक पंक्ति में चापलूसी करते हो और दूसरे में आदेश के साथ अमुक-तमुक माँगते हो।शर्म नहीं आती? और शत्रुओं का नाश करने की मांग कर रहे हो, तो क्या तुम्हारे शत्रु माँ के भी शत्रु हैं? अरे उसके तो सब बच्चे हैं। भला तुम्हारे कहने से वह अपने दूसरे बेटे का नाश क्यों करेगी। बेचारा चुप हो गया। अब वह पाठ मौन होकर करने लगा। हम फिर चट्टान पर ध्यानस्थ हो गए। अद्भुत आनंद मिल रहा था। जाने कब रात के बारह बज गए। हम घर के लिए चल दिए।

दूसरे दिन पूर्वांचल प्रेस क्लब का न्योता मिला कि भाई आप अपनी एक किताब का विमोचन हमारे पत्रकारिता दिवस समारोह में करा लीजिये। प्रेस क्लब मिर्ज़ापुर के अध्यक्ष मिलने आये और उपन्यास ब्रह्मनासिका का विमोचन कराने का अनुरोध किया। दोनों जगह कार्यक्रम तय हो गया। दोनों का विमोचन अकल्पनीय तरीके से हो गया। 15 दिन बाद के बी कालेज के प्राचार्य ने जिद कर तीसरी पुस्तक का विमोचन अपने समारोह में करा दिया। पहाड़ जैसे तीनो काम खुद-ब-खुद हो गए। फिर तो वह साल ऐसा गुजरा कि जैसे माँ का अतिरिक्त आशीर्वाद मिल गया हो। मेरे मन में पता नहीं क्यों यह विश्वास होता गया कि शायद माँ ने मुझे और मेरे विचार को उचित माना। तभी से पंडित जी हमसे मिलने में झिझक रहे हैं। जबकि मै कई बार उनको आश्वस्त कर चूका हूँ कि आप का कोई दोष नहीं है। आप तो वही बोले थे, जो शास्त्रों में कहा गया है। हाँ, और माँ का रिश्ता कुछ दूसरे तरह से चल रहा है तो हम क्या करें। पर पंडित जी शायद अब भी झेंप रहे हैं।

पुलिस अस्पताल के पीछे, तरकापुर रोड, मिर्ज़ापुर, उत्तर प्रदेश

मुख्य सहनशीलता का गुण, सेवा मे सफलता के लिए अतिआवश्यक है।
शरीर का तृप्ति का साधन अन्न-धन है औ आत्मा की तृप्ति का साधन रुहानी स्नेह है।
जितना आप परमात्मा के स्नेह में रहेंगे, उतना दूसरों का भी स्नेह और सहयोग मिलेगा।

अपनी आंतरिक शक्ति पहचानें

अंजलि खेर

कुछ ही दिन पहले मैंने पढ़ा कि कई मल्लाह दिन ढलते, नदी के उस पार जाने के लिए बड़ी सी नाव में बैठे, और सभी अपनी-अपनी पतवार थामें जल्दी से जल्दी पहुंचने की आस लिए लगातार पतवार चलाते रहे, किंतु यह क्या ? पूरब दिशा से रवि की रश्मियां जल में झिलामिला उठीं, नाविकों ने देखा कि नाव तो नदी के उसी छोर पर खड़ी है जिस छोर से वे बैठे थे। वे सभी कारण जान पाते इससे पहले किनारे खड़े मछुआरे ने हंसते हुए कहा कि मेरे भाइयों, आप लोगों ने खूटी से बंधी डोरी से नाव खोली ही नहीं तो आप लोग कैसे आगे बढ़ पाओगे?

सभी नाविकों को यह जानकर ना केवल बहुत पछतावा हुआ बल्कि हैरानी भी हुई कि उनमें से किसी का भी ध्यान नाव से बंधी रस्सी पर क्यों नहीं गया? सारी मेहनत जरा सी लापरवाही से बेकार हो गई। इस कहानी को एक विश्वविद्यालय के लेखक एवं वक्ता ने बहुत खूबसूरती से मानव मन की प्रवृत्ति से जोड़ा है, उन्होंने लिखा है कि जिस तरह नाविक रस्सी बंधे होने के कारण अपनी नाव को गंतव्य तक ले जाने में असफल रहे, ठीक उसी तरह जब कोई व्यक्ति खूंटी पर बंधी हुई रस्सी रूपी पूर्वाग्रहों अथवा उस व्यक्ति विशेष पर अन्य व्यक्तियों द्वारा की गई नकारात्मक टिप्पणी की गांठ को बांध कर बैठा रहेगा तो कभी अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकेगा।

हममें से अधिकांश लोगों की यह प्रवृत्ति होती है कि कभी तो अपने परिचितों या मित्रगणों की नकारात्मक टिप्पणियों को सुनकर आत्म शक्तियों को प्रति आशंकित हो जाते हैं और फलस्वरूप अपने लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग से पथभ्रमित हो जाते हैं।

घर आने वाले आगंतुकों के सामने माता-पिता द्वारा अपने बच्चे के परिचय उसके गुणों, उसके आकर्षक व्यक्तित्व एवं उसकी अर्जित सफलताओं के गुणगान के साथ कराया जाता है। वहीं दूसरे बच्चे का का परिचय उसकी कमियों, असफलताओं से कराया जाता है, इस कारण जहां एक बच्चे की हौसला आफजाई होती है वहीं दूसरा बच्चा हीन भावनाओं से ग्रस्त हो अपना आत्म विश्वास खो बैठता है। चपन से ही मन पर हावी हुई ये भावनाएं निकट भविष्य में मनुष्य के मनोमस्तिष्क में उद्दीप्त होती भावनाओं को निखरने के पूर्व ही दीमक की तरह तिल-तिल कर समाप्त कर देती है। कई बार व्यर्थ नकारात्मक टिप्पणियों से मनुष्य डिप्रेशन अथवा अवसाद का शिकार होकर परिवार-समाज से एकदम अलग-थलग होकर स्वयं तक खुद को सीमित कर लेता है।

> हारने वाले के पास हजारों विकल्प होते हैं, चैंपियन बस एक ही चीज जीत का निशाना साधने में और कौशल प्राप्त करने में लगे रहते हैं। तो क्यों न हम अंतर्मन की असीम शक्तियों को पहचानें और अधिकाधिक निखार लाने का प्रयास करें, कुछ गुणों को अपनी आदतों और स्वभाव में शामिल करने की सफल पहल करें।

असफलता का भय हमारी आत्मशक्तियों को विकेंद्रित करता चला जाता है। हम यह भूल जाते हैं कि हारने के बाद भी अनेक राहें हमारा आव्हान करती हैं, हमारे पास अनेक विकल्प उपलब्ध होते हैं। हार के भय से पूर्वाग्रह से ग्रस्त ऐसे व्यक्ति, जो लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में आने वाली छोटी-छोटी बाधाओं से हार मानकर प्रथम पायदान पर ही घुटने टेक लेते हैं अपनी हौसला आफजाई करने के लिए विक ब्रोडन ने बहुत खूबसूरती से शब्दरचना की है - हारने वाले के पास हजारों विकल्प होते हैं, चैंपियन बस एक ही चीज जीत का निशाना साधने में और कौशल प्राप्त करने में लगे रहते हैं।

तो क्यों न हम अंतर्मन की असीम शक्तियों को पहचानें और अधिकाधिक निखार लाने का प्रयास करें, कुछ गुणों को अपनी आदतों और स्वभाव में शामिल करने की सफल पहल करें -

1- अगर हम डर को जीतना चाहते हैं तो घर बैठकर सोचने की बजाय बाहर निकल कर अपने काम में जुट जाना होगा।

2- यदि जटिल लक्ष्य को छोटे-छोटे सहजसाध्य लक्ष्यों में बदल सकते हैं तो इस हेतु प्रयास करना होगा। चूंकि जब हमारा

कोई काम पूरा होता है तो मस्तिष्क से एंडार्फिंस की थोड़ी मात्रा रक्त में पहुंच जाती है, जो प्राकृतिक मार्फिन होता जिससे खुशी और स्फूर्ति का अहसास होता और व्यक्तित्व निखरता है, यह प्रकृति प्रदत्त चमत्कारी दवा है, जो एक तरह से हमारी सफलता का पुरस्कार होती है।

3- नकारात्मक प्रवृत्ति वाले लोगों से आवश्यक दूरी बना कर रखना होगी, चूंकि ऐसी प्रवृत्ति वाले लोग हमेशा हारने, बाधाओं एवं असुविधा की ही बात करते हैं, जिनकों सुनकर मन अकारण पथभ्रमित होती है।

4- कोई भी व्यक्ति सर्वगुण संपन्न नहीं होता, किंतु सतत् प्रयासरत रहकर कमियों में सुधार लाने का प्रयास किया जा सकता है, अत: हमें अपने कमजोर क्षेत्रों को पहचानने का प्रयास करना होगा।

5- प्रतिदिन अपने आप से कहना चाहिए कि - क्यों कि मुझ में इतनी क्षमता, योग्यता और शक्ति है कि जो कुछ भी मैं चाहूं उसे प्राप्त कर सकूं, इसलिए मैं उसे प्राप्त करके रहूंगा / रहूंगी।

6- लोग हमारे संबंध में जो कुछ सोचते हैं उन्हें सोचने दीजिए। परंतु स्वयं को जो सही लगे वहीं करें, प्रशंसा अथवा अनादर की चिंता न करें।

7- हमें यह मानकर चलना चाहिए कि जिस तरह वायु के भयंकर तूफान में चील आकाश में और ऊंचा उड़ती है, उसी प्रकार लोगों द्वारा की जाने वाली आलोचनाओं और नकारात्मक टिप्पणियों को सुनकर हताश होने के बजाय काबिलियत के बल पर वक्ता को यथोचित प्रतिउत्तर प्रस्तुत करने के लिए करबद्ध दृढ़ प्रतिज्ञ रहना होगा।

8- यह मानकर चलें कि सफलता स्थाई नहीं होती, असफलता कभी अंतिम नहीं होती अत: सफल होने की स्थिति में भी पैर जमीं पर रहें और असफल होने पर हताश होने के बजाय कमजोर पक्ष को जानकर पुन: नवीनतम सिरे से प्रयास शुरू करना होगा।

9- खुद को कमतर आंक के कोई भी जीवन में लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता, अत: स्वयं को कमतर आंक कर अपनी योग्यता पर प्रश्नचिन्ह न लगने दें।

10- प्रसन्नचित्त आचरण एवं उत्साह से प्रफुल्लित मन के ऐसे फलदायी गुण हैं जिसके कारण ही आजतक महान उपलब्धियां संभव हो सकी हैं, अत: इन गुणों को आत्मसात करने का सदा प्रयास करना चाहिए। इससे ही संसार की समस्त रिद्धि-सिद्धि प्राप्त करने में हम सदैव सफल होंगे।

10-सकारात्मक प्रवृत्ति वाले लोगों के विचारों एवं बातों में सदैव अनेक बाधाओं को सहजसाध्य कर सफलता के क्षितिज को प्राप्त करने वाले लोगों का ही समावेश होता हैस अत: सदैव ही ऐसी प्रवृत्ति वाले लोगों के साथ में रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

12- व्यक्ति हार जाने से खत्म नहीं होता, परंतु वह तब खत्म हो जाता है, जब वह स्वयं को हारा हुआ मान लेता है। इस संबंध में हेनरी बड्सवर्थ ने कहा है -

न तो भीड़ भरी गलियों के उल्लास में
न तो लोगों की कोलाहल भरी जय-जयकार में।

■

डकैती

दो लब्ज़ चुराए थे ज़िन्दगी से मैंने भी
शराफत और सहनशीलता

दो धीरे धीरे अपनाए
सचाई और ईमानदारी

इन चारों को घुलाया मिलाया
मन की देहरी पर पौध लगाया

पौध के साथ ताने भी बढ़ने लगे
चुटकुलों और बेवकूफी के किस्से चल निकले

आज मेरे पास सबकुछ है
नहीं हैं तो वो चुराए , अपनाए चार शब्द

घोषणा करती हूँ अब मैं चोरी नहीं करुँगी
अपनाना भी मैंने कबका छोड़ दिया

अब मैं दिन दहाड़े डकैती करूंगी
रोक सको तो रोक लो ....

- डॉ सुधा उपाध्याय

एक मास्टर क्या कमाता है

मनीष तिवारी

बात इसी जनवरी के आखिरी दिनों की है। छब्बीस जनवरी को मेरे पापा ने अपने स्कूल में घोषणा कर सन्नाटा सा फैला दिया कि सिर्फ चार दिन बाद वे सेवा निवृत्त हो रहे हैं। इसका अंदाजा उनके साथी शिक्षकों और गाँव वालों के किसी को भी नही था। दरअसल बात यह चल रही थी कि इस शिक्षण सत्र के आखिर तक याने तीन महिने और वे अपनी सेवाएं स्कूल को देते रह सकते हैं। लेकिन लालफीताशाही इस एक्सटेंशन के लिए चढ़ावे की चाह रख रही थी जो सिद्धान्त परस्त एक ईमानदार शिक्षक को भला कहाँ गवारा था।

डिंडौंरी जिले के उस छोटे से गाँव मोहगाँव जहाँ सबसे पहले हम तब आए थे जब यह इलाका बस्तर के अबूझमाड़ की तरह अविकसित सरजमीं का पर्याय माना जाता था। उस वक्त न जिला टूटा हुआ था नाही प्रदेश। साल था 1979। हम इतने छोटे थे कि कुछ होश ही नही। हाँ पापा बताते हैं कि उन्हे छोड़ने तीस चालीस लोग उनके पिछले स्कूल वाले गाँव भपसा से आए थे। पापा किन परिस्थितियों में यहाँ बुलाए गए यह एक अलग कहानी है।

अक्सर देखा है कि किसी के सेवानिवृत्त होने पर एक शॉल और नारियल भेंट कर दो चार शब्दों के साथ कर्तव्यों की इतिश्री कर दी जाती है। वो शख्स जिसने अपनी जवानी इस कार्य को दे दी। वही बेगाना हो जाता है। कुछ ऐसा ही होने की उम्मीद थी। घर में बैठा था कि पापा के स्कूल के दो शिक्षक आए। अदब और विनम्रता से नमस्ते की और बैठ गए। अंदर चाय बनाने को कहने गया और बाहर आया तो क्या देखता हूँ कि दोनों झिझकते हुए एक दूसरे को कुछ इशारा कर रहे हैं। मम्मी बाहर निकलीं तो उन्हे प्रणाम किया दोनों शिक्षकों ने एक छोटा सा कार्ड दिया जिसमें पिता जी की सेवानिवृत्ति पर एक छोटे से कार्यक्रम की सूचना और आमंत्रण था।

अचानक बैंड बाजों की आवाज ने चौंका दिया। देखता क्या हूँ कि सैंकड़ों स्कूली छात्रों-छात्राओं का हुजूम आँगन में किसी बयार की तरह बरबस घुसा सा चला आ रहा है। सैलाब चाहे किसी दरिया का हो या जज्बात का भला किसी के रोके कहाँ रुकता है। आँगन में आ घुसे इस सैलाब में हर कोई डूब सा गया। पापा जैसे ही घर से बाहर निकले शिक्षकों ने उन्हे मालाओं से लाद दिया। पापा को इतना भी वक्त नही मिला कि वो कपड़े बदल लें। घर के जिन कपड़ों में वो घर में पूजा की तैयारियों में व्यस्त थे इस उत्साह में शामिल हो उन्ही में स्कूल की ओर चल पड़े.ऐसा नजारा अक्सर चुनावों के वक्त जीते प्रत्याशियों के साथ दिखाई देता है लेकिन वो भीड़ किस तरह से जुटाई जाती है यह किसी से छिपा नही है। लबों पर मुस्कान और आँखों में नमी लेकर पापा चल पड़े।

मैं भी जाना चाहता था इस हुजूम के साथ। वैसे तो भीड़ का हिस्सा बनने का शौक न मुझे पहले कभी रहा है ना अब है लेकिन उस रोज दिल ने चाहा कि इस शिक्षक जिसने मुझे भी मार्ग दिखाया है। गोविंद का पता दिया है उसके सम्मान में मैं भी चलूँ लेकिन पूजा से उठना गलत होता सो मजबूरी में दिल की कसक को दबाया। वो तो शुक्र हो पंडित जी का जिन्होने विधान समाप्त किया और आज्ञा दी कि मनीष आप जा सकते हो भई।

भागकर स्कूल पहुँचा तो वहाँ पापा के सम्मान में सभा चल रही थी। आसपास के दर्जनों स्कूलों के शिक्षक सामने बैठे अपने प्रिय शिक्षक को निहार रहे थे। कहते हैं कि एक शिक्षक का असर जीवन पर्यंत रहता है.कुछ ऐसा ही विचार वहाँ बैठे हर शिक्षक के दिल में था जो खुद को उस साँचे में ढालना चाहते थे जिस वक्त के साँचे को तिवारी गुरुजी ने बदला था। इधर सभा चल रही थी और उधर मैं मंच से परे नेपथ्य में चला गया। वक्त से परे याद आने लगे पापा के जीवन से जुड़े किस्से।

आदिवासी बहुल इस इलाके में जब पापा आए थे तब विकास कोसों दूर था। दसेक किलोमीटर पदयात्रा के बाद बस मिलती थी.सड़क ऐसी जिसे सड़क कहना गाली था। उस उस गाँव में पापा ने अपना कैरियर चुना था। मामा पुलिस में थे उस वक्त पापा का आबकारी इंस्पेक्टर के पद पर सीधी भर्ती का आदेश आ गया था। पापा ने उसे छोड़कर मास्टरी अपनाई।

खैर... नियुक्ति के बाद स्कूल आए तो देखा कि यहाँ तो माहौल ही उल्टा है..इस माहौल में पढ़ाई की कल्पना ही बेमानी है। बच्चों को इसलिए स्कूल में भर्ती कराया

जाता है ताकि स्कॉलर के जरिए कुछ आमदनी हो सके। वेषभूषा की बात करें तो यूनीफार्म जैसा चलन ही नही। बस घर से निकले तो स्कूल आ धमके बच्चे। मास्टर गप्पबाजी में व्यस्त लेकिन गप्प लड़ाने के लिए तो पापा ने नौकरी ज्वाइन नही की थी। बच्चों को समय पर स्कूल आने का आदेश दिया गया तो लड़कियों को दो चोटी और यूनिफार्म का। पहले तो एक बंधी-बँधाई लीक पर चल रहे दूसरे शिक्षकों को यह नागवार गुजरा लेकिन लीक से हटकर चलने वाला तिवारी अडिग था।

फिर कई किस्से बनते चले गए। स्थानीय गणमान्य जो आए दिन दिल्ली भोपाल का सफर करते रहते थे। विधायक साँसद जिनकी मर्जी के बिना बन नही सकते थे उनके साहबजादे पापा की ही क्लास में थे.एक दिन जवानी के जोश में उन्होने एक लड़की को शायरी लिखा प्रेमपत्र थमा दिया और न जाने कैसे पापा के हाथों में यह लैटर पड़ गया। बस उन्होंने प्रार्थना में उन साहबजादे को दो चार थप्पड़ जड़ दिए। अनुशासन के नाम पर जल्दी आना तक तो ठीक ठाक था और सहनीय भी लेकिन यह दुस्साहस। .शिक्षकों ने उन्हे धमकाया कि ये क्या कर बैठे तिवारी। .अब बोरिया बिस्तर समेट लो। कल तक तुम्हारा बस्तर ट्रांसफर हो जाएगा.जो होगा सो देखा जाएगा सोच कर पापा घर चले आए लेकिन बकरे की अम्मा कब तक खैर मनाती। शाम को पापा के पास संदेशा आ गया कि पंडितजी ने आपको बुलाया है। .दरबार में पहुँचे तो क्या देखते हैं कि विघ्नसंतोषी सहकर्मी पहले से ही डटे बैठे हैं। गणमान्य ने पापा को बैठाया फिर बात निकली उस वाकये की तो तारीफों के पुल गढ़ने शुरु कर दिए कि शिक्षक का मतलब ही यही होता है कि वो सही रास्ता दिखाए। आप ने बिलकुल सही किया। दरबारियों के तोते उड़ गए और तिवारी जी याने मेरे पापा घर वापस आ गए।

रिजल्ट की बात करें तो पापा साल भर जी तोड़ मेहनत न सिर्फ अपने विषयों में करते बल्कि साथी शिक्षकों को कोई दिक्कत पेश आती तो उनके विषय भी अपने हाथ में ले लेते। परीक्षा के समय पर बाकी शिक्षक केन्द्राध्यक्ष बनकर आए प्रोफेसर की गुलामी करते और कोशिश करते की थोड़ी ढिलाई हो जाए तो रिजल्ट सुधर जाए लेकिन पापा ताल ठोककर नकल का विरोध करते और इसके बाद भी उनके लड़के टॉप करते.

और भी कई किस्से हैं। अनुशासन के लिए किस किससे झगड़ा मोल नही लिया पापा ने। लेकिन एक मास्टर सिर्फ इसलिए तो इतना लोकप्रिय नही हो सकता कि हमें देखकर बारह पन्द्रह गाँवों के लोग कहें कि ये तिवारी गुरुजी के बेटे हैं। कई बार देखा कि अक्सर ऐसे लोग अपने बच्चों को पढ़ाने की अभिलाषा लेकर पापा के पास आ जाते जिनकी दिन और महिने तो छोड़िए साल भर की कमाई पन्द्रह बीस रुपए बमुश्किल होती है। कई दफा तो बिटिया की शादी के

लिए जोड़े गए पैसे जो चिल्लर की शक्ल में होते, लेकर फीस के नाम पर आ जाते। भले दस पन्द्रह रुपए फीस लगती लेकिन गरीब गाँव वालों के लिए यह काफी होती.जो पैसे दे देता तो ठीक वरना पापा उसकी फीस जमा कर उन्हे चलता कर देता। सामने वाले को पता भी नही चलता कि इस शिक्षक ने क्या कर दिया। पापा घर आकर मम्मी को बताते।

बगल में सोए हम दोनो भाई चुपचाप सुनते रहते और शायद संस्कार भी डालते जाते हम भाइयों के भीतर। इस माहौल का फायदा हमें हुआ कि हम मध्यम वर्गीय समाज की हकीकत से रुबरु होते गए। हमने यह भी देखा है कि किलो भर राशन की शक्कर लेकर आने वाले परिवार को डिब्बे में भरते वक्त एक दो दाने जमीन पर गिर जाते तो उन्हे उनके बच्चे अंगुलियाँ गीली कर एक एक कतरा उठाते।

फिर बात वही आ जाती है कि आखिर कैसे एक शिक्षक इतना माननीय हो गया। कई वजूहात हैं। मुझे इसकी जानकारी तब हुई जब पापा का अटैचमेंट पास के बिलगाँव में हुआ। यहाँ स्कूल के नाम पर कुछ नही था एक दो शिक्षक दिन रात शराब के नशे में टुन्न रहते। पापा ने सबसे पहले शराब बंद कराई इसके बाद समस्या आई बिल्डिंग की। बरसात में स्कूल मानसून की दया पर निर्भर रहता। गर्मी ठंड में पेड़ के नीचे गुरुकुल स्टाइल में शिक्षा का ज्ञान दिया जाता। पापा ने इसके लिए भी रास्ता निकाला तय किया गया कि स्कूल की इमारत जनसहयोग से तैयार कराई जाए। स्कूल की छुट्टी के बाद पापा साथी शिक्षकों को लेकर निकल पड़ते आसपास के गाँवों के लोगों से सहायता माँगने। गाँववाले पैसे वैसे तो दे नही पाते तो उनसे अनाज ले लिया जाता। एक सरकारी शिक्षक स्कूल की इमारत के लिए दर ब दर भटके यह आज सोच से भी परे लगते है लेकिन लगन के आगे कुछ भी असंभव नही। सहयोग मिलता गया और माटी से बनी एक शानदार इमारत तैयार हो गई। अच्छा एक बात और। बिलगाँव में आठवीं के बच्चे बोर्ड परीक्षा देने के लिए मोहगांव जाते थे। पापा इन बच्चों को मोहगाँव में ठहराते। महिने भर जबतक परीक्षा चलती बच्चों की देखभाल पापा की जिम्मेदारी रहती। लड़के लड़कियाँ अलग अलग ठहराए जाते और दिन रात जमकर होती पढ़ाई। वो बिलगाँव का मिडिल स्कूल जो पहले आखिरी स्थान पर आने के लिए अभिशप्त था। पापा के आने के बाद पहले नंबर पर आने लगा। पापा को सहयोग मिल रहा था।

रामशरण हरदहा जैसे शिक्षक का जो पढ़ाई के मामले में किसी भूत की तरह हैं। वो भी दिन रात जुते रहते बच्चों की दिक्कतों को सुलझाने के लिए। ऐसे मास्टर को भला क्यों नही चाहेंगे गाँव वाले। कुछ ऐसा ही अनुभव कुछ दिनों बाद हुआ। मोहगाँव में स्कूल की इमारत का निर्माण दो तीन साल पहले हुआ। सरकारी खर्चे से इमारत बन रही थी। ठेकेदार पापा को जानते हैं इसलिए जहाँ तक संभव हुआ ईमानदारी बरती गई लेकिन फिर भी आखिर में पापा के स्वप्न की इमारत बनाने में कुछ कमी रह गई। तो पापा ने बगैर हम लोगों को बताए दस पन्द्रह हजार रुपए अपने पास से मिला दिए। मम्मी को समझाते हुए पापा ने कहा कि आज अपन जो कुछ भी हैं इसी स्कूल की बदौलत तो हैं। बेटे अच्छे से सैटल हो गए हैं और क्या चाहिए। दुआ मिलेगी। मम्मी ने बाद में मुझे ये बात बताई थी तो अंतर तक भीग गया था मेरा मन.

जाहिर है इसका प्रतिसाद तो मिलना ही था.तालियों की गड़गड़ाहट ने मेरा ध्यान भंग किया। पापा का संबोधन खत्म हो चुका था.आखिरी पाठ में उन्होने बच्चों और शिक्षकों को अनुशासन का पाठ पढ़ाया। स्कूल के प्रति पापा का लगाव हमेशा बना रहे इसलिए मम्मी ने स्कूल में फर्स्ट आने वाले बच्चों के लिए सालाना शील्ड और नगद पारितोषिक की घोषणा इसी कार्यक्रम में कर दी। कार्यक्रम खत्म हुआ। फिर वापस घर की ओर चल पड़े पापा तो उनके साथ शिक्षकों का समूह था। लेकिन यह इति नही था.घर में रामधुन चल रही थी। चौबीस घंटों तक रामायाण का अनवरत पाठ के बीच राम के नाम का संकीर्तन। लगा कि कार्यक्रम खत्म हो गया लेकिन मेरा अंदेशा गलत था पापा के घर वापस आते ही लोगों के आने का जो सिलसिला शुरु हुआ तो देखते ही देखते लंबा चौड़ा आँगन भर गया। बाड़ी जहाँ रामधुन चल रही थी वहाँ का नजारा तो देखने लायक था। महामानव समुद्र मानो हमारे घर में घुसा चला आ रहा था। जिधर देखिए बस सिर ही सिर। हर कोई आता पापा से मिलता सिर झुकाता और दुख जताता कि अब स्कूल का क्या होगा। कई आँखे नम थीं। महिला पुरुष बच्चे बूढ़े। शायद ही कोई घर बचा था जहाँ से लोग न आए हों। रात आई। माघ की दो तीन डिग्री तापमान वाली रात लेकिन लोग जाने का नाम ही नही ले रहे थे। जोश के साथ गूँज रहे थे राम के जयकारे। अलावों के पास बैठे लोग। कोई बुजुर्ग हमारे गालों को सहलाता और कहता कितने बड़े हो गए मनीष। मैं कहता आप भी तो कितने बूढ़े हो गए। वातावरण में गूँज जाती हँसी की लहर। कितनी आत्मीयता कितना अपनापन। इतनी खुशी इतना स्नेह कि इस वातावरण में मरने का भी गम न हो। दो दिन तक लोग आते रहे। जब वापसी की बारी आई तो सैकड़ों लोग विदाई देने को मौजूद। शायद यही है एक मास्टर की कमाई। वो लोग जो पूछते हैं कि एक मास्टर क्या कमाता है उन्हें मेरा जवाब है ये सैकड़ों हजारों गरीब फटेहाल लोग। हाड़ कंपाऊँ सर्दी में पापा के लिए बैठे रहे राम के जयकारे लगाते रहे, यही है एक मास्टर की कमाई। दौलत के महल तो हजारों लोग कमाते हैं लेकिन लोग कौन कमाता है। यही तो है एक मास्टर की कमाई...

पत्रकार, (भोपाल)

संसार एक शीशमहल

एक दिन एक शिष्य ने गुरु से पूछा, गुरुदेव, आपकी दृष्टि में यह संसार क्या है? इस पर गुरु ने एक कथा सुनाई। एक नगर में एक शीशमहल था। महल की हरेक दीवार पर सैकड़ों शीशे जड़े हुए थे। एक दिन एक गुस्सैल कुत्ता महल में घुस गया। महल के भीतर उसे सैकड़ों कुत्ते दिखे, जो नाराज और दुखी लग रहे थे। उन्हें देखकर वह उन पर भौंकने लगा। उसे सैकड़ों कुत्ते अपने ऊपर भौंकते दिखने लगे। वह डरकर वहां से भाग गया। कुछ दूर जाकर उसने मन ही मन सोचा कि इससे बुरी कोई जगह नहीं हो सकती।

कुछ दिनों बाद एक अन्य कुत्ता शीशमहल पहुंचा। वह खुशमिजाज और जिंदादिल था। महल में घुसते ही उसे वहां सैकड़ों कुत्ते दुम हिलाकर स्वागत करते दिखे। उसका आत्मविश्वास बढ़ा और उसने खुश होकर सामने देखा तो उसे सैकड़ों कुत्ते खुशी जताते हुए नजर आए। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। जब वह महल से बाहर आया तो उसने महल को दुनिया का सर्वश्रेष्ठ स्थान और वहां के अनुभव को अपने जीवन का सबसे बढ़िया अनुभव माना। वहां फिर से आने के संकल्प के साथ वह वहां से रवाना हुआ।

कथा समाप्त कर गुरु ने शिष्य से कहा, संसार भी ऐसा ही शीशमहल है जिसमें व्यक्ति अपने विचारों के अनुरूप ही प्रतिक्रिया पाता है। जो लोग संसार को आनंद का बाजार मानते हैं, वे यहां से हर प्रकार के सुख और आनंद के अनुभव लेकर जाते हैं। जो लोग इसे दुखों का कारागार समझते हैं उनकी झोली में दुख और कटुता के सिवाय कुछ नहीं बचता।

संकलनः लखविन्दर सिंह

स्वास्थ्य

मेथी दाने में छिपा अचूक इलाज

मेथी बहुत ही कारगर औषधि है। इसके साथ ही यह पाचन शक्ति और भूख बढ़ाने में मदद करती है। मेथी एक ऐसी सब्जी है जो स्वादिष्ट होने के साथ ही कई तरह के स्वास्थ्य लाभ भी देती है। मेथी की पत्तियों को सब्जी के तरह व इससे प्राप्त दानों को यानी मेथीदानों को मसाले के रूप में उपयोग में लाया जाता है। मेथी घर-घर में सदियों से अपना स्थान बनाए हुए है। खास तौर पर इसका प्रयोग मसालों में किया जाता है। इसके बीजों में फॉस्फेट, लेसिथिन और न्यूक्लिओ-अलब्यूमिन होने से ये कॉड लिवर ऑयल जैसे पोषक और बल प्रदान करने वाले होते हैं। इसमें फोलिक एसिड, मैग्नीशियम, सोडियम, जिंक, कॉपर, नियासिन, थियामिन, कैरोटीन आदि पोषक तत्व पाए जाते हैं। मेथी व मेथीदानें का सेवन तो हम सभी करते हैं लेकिन उसके औषधीय गुणों के बारे में भी जानना जरूरी है–

लो-ब्लडप्रेशर में - मेथी की सब्जी में अदरक, गर्म मसाला डालकर खाने से निम्न रक्तचाप में फायदा होता है।

एसिडिटी में बढ़िया उपचार - डायरिया और हार्टबर्न के अलावा मेथी के रस से पेट और आंत की सभी समस्याएं दूर होती हैं। अगर आप अल्सर और एसिडिटी को ठीक करना चाहते हैं तो मेथी और मठ्ठे को घोल कर पीएं। सिर्फ यही नहीं अगर आप रोज़ सुबह खाली पेट कुछ मेथी के दानें खाएगें तो पेट के सभी रोग दूर होगें।

त्वचा संबधी रोगों से निजात- अगर आपको खुजली, जलन, फोड़े-फुंसी और गांठ की समस्या है तो आपको कुछ ग्राम मेथी खाने की आवश्यकता है। न सिर्फ खानें से बल्कि इसके पेस्ट को लगाने से भी फायदा होता है। अगर रुसी की समस्या है तो बालों में मेथी और दही मिला कर लगाने से यह समस्या जल्द दूर हो जाएगी।

कोलेस्ट्रॉल संतुलन- डॉक्टरों का कहना है कि यह हार्ट रोगियों के लिए एक वरदान के समान है जिसे वह रोज अपने भोजन में खा कर अपने बढे हुए कोलेस्ट्रॉल लेवल को कम कर सकता है। अगर मेथी के दाने ज्यादा कड़वे हों तो उन्हें कैप्सूल के रूप में भी खाया जा सकता है।

डाइबिटीज के रोगियों के लिए लाभदायक- रिसर्च के अनुसार यह जानकारी प्राप्त हुई है कि यह टाइप 2 के मधुमेह रोगियों के लिए काफी लाभकारी होता है। अगर रोगी रोज दिन में 6-7 मेथी के दानों का या फिर मेथी के पानी का सेवन करें तो उसका शुगर लेवल कम हो सकता है।

उर्जा को बढ़ाता है- मेथी से से इंसान की यौन ऊर्जा बढ़ती है। मेथी के दाने व्यक्ति को कामोत्जेना में मदद करते हैं साथ ही अगर कोई व्यक्ति मेथी का नियमित सेवन करता है तो वो यौन रोगों से ग्रसित भी नहीं होगा।

सिर की त्वचा में समस्या- मेथी को पूरी रात भिगो दें और सुबह उसे गाढ़ी दही में मिला कर अपने बालों और जड़ो में लगाएं। उसके बाद बालों को धो लें इससे रुसी और सिर की त्वचा में जो भी समस्या होगी वह दूर हो जाएगी। साथ ही मेथी के अधिक सेवन से भी बाल स्वस्थ रहते हैं।

साइटिका में- आयुर्वेदिक चिकित्सकों के अनुसार मेथी के बीज आर्थराइटिस और साइटिका के दर्द से निजात दिलाने में मदद करते हैं। इसके लिए 1 ग्राम मेथी दाना पाउडर और सोंठ पाउडर को थोड़े से गर्म पानी के साथ दिन में दो-तीन बार लेने से लाभ होता है।

बदहजमी/अपच: घरेलू उपचार में मेथी दाना बहुत उपयोगी होता है। आधा चम्मच मेथी दाना को पानी के साथ निगलने से अपच की समस्या दूर होती है।

उच्च रक्तचाप: 5-5 ग्राम मेथी और सोया के दाने पीसकर सुबह-शाम पीने से ब्लड प्रेशर संतुलित रहता है। ■

स्वाईन फ्लू से बचने के उपाय

स्वाइन फ्लू के लक्षण

डॉक्टरों के अनुसार स्वाईन फ्लू में शुरू में बुखार आता है, सर्दी लगती है, खांसी आती है, नाक से पानी बहता है, उल्टी होती है, डायरिया भी हो जाता है। इसमें कुछ लोगों को ही यह बीमारी होती है। शेष को सर्दी, जुकाम व बुखार आता है।

स्वाईन फ्लू से बचावः-

1. तुरंत डॉक्टर को दिखाएं। डॉक्टर के अनुसार जाँच व ईलाज शुरू कर देवें।
2. पीने के पानी में, खाने के बर्तन में हाथ धोकर हाथ लगाएं।
3. बाहर से आने के बाद हाथ धोयें।
4. भीड़ में से आने के बाद गर्म पानी में नमक डालकर कुल्ला (गरारा)करें।
5. खाने पीने की वस्तुएं बाहर ले जाते समय सफाई का ध्यान अवश्य रखें।
6. योग मेंः-

(ए) शरीर संचालन पांव की उंगली से सिर तक प्रत्येक अंग को स्ट्रेच कर रिलेक्स करें। 10 बार जिस तरह क्रिकेट खिलाड़ी मैदान में करते हैं। ऊँ का उच्चारण 21 बार करना है। निस्पाद भाव -दीवाल के पास बैठकर लंबे पांव कर बाहर की आवाज सुनना 5 मिनट, ध्यान 5 मिनट.

(बी) योगेन्द्र प्राणायाम (लोम-अनुलोम) 20 बार बांई नाक से सांस लेना व दाहिनी नाक से सांस छोड़ना 20 बार।

(सी) भ्रामरी प्राणायाम 10 बार।

(डी) शवासन 10 मिनट।

(इ) योग निद्रा - 20 मिनट।

(एफ) सुबह व शाम गर्म पानी में नमक डालकर गरारा(कुल्ला करना)

(जी) थोड़ा अदरक, 7 तुलसी के पत्ते, 3 काली मिर्ची, एक छोटा चम्मच गुड़ मिलाकर एक कप पानी को उबालकर आधा कप करें, आधा पानी सुबह व आधापानी रात को एक व्यक्ति को लेना है।

(एच) रात को गर्म दूध में एक छोटी चम्मच हल्दी मिलाकर पीना है।

(आई) खुली हवा में सड़क, बगीचा, वराण्डा, छत पर अपनी शक्ति के अनुसार 1 से 2 किलोमीटर पैदल घूमना है।

(जे) दिन में एक बार दिल खोलकर हंसना है। हरी सब्जी खान-पान में ध्यान रखना है। रात का खाना सोने से डेढ़ घण्डा पहले खाना है।

ए.के. रावल, योगाचार्य, पत्रकार कालोनी(साकेत), इंदौर

हीरे मोती की खेती

मंजरी शुक्ला

बहुत पुराने समय में सुन्दरगढ़ नाम के राज्य में राजा कृष्णदेव का राज्य था।

वह बड़ा ही उदार और दानी था। उसकी रानी प्रियंवदा भी सहृदय तथा प्रजा के सुख दु:ख का ध्यान रखती थी। उनके एक ही पुत्र था यशदेव। वह अपने माता-पिता से बिलकुल विपरीत था। उसका ध्यान सदैव धन की ओर ही लगा रहता था। उसे हर समय सोना चांदी, हीरे- मोती आदि के अलावा कुछ सूझता ही नहीं था। राजा कृष्णदेव की अनेक कोशिशों के बाद भी वह ना तो विद्यार्जन कर सका और ना ही राजकाज में रूचि ले पाया। राजा के तेजस्वी मुख पर सदैव विषाद की एक छाया विद्यमान रहती थी। राजा- दिन रात इसी चिंता में घुले जा रहे था।

अचानक उनके राज्य में एक सिद्ध महात्मा का आगमन हुआ। चारों ओर से लोग उनके दर्शन तथा प्रवचन के लिए व्याकुल हो उठे। राजा कृष्णदेव तक भी उनकी कीर्ति पहुंची। वे भी फल-फूल लेकर उनके दर्शनों के लिए गए। महात्माजी कुछ समय तक तो राजा को ध्यानपूर्वक देखते रहे, फिर बोले- 'राजन, में तुम्हारे राज्य में आकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। चारों और शांति तथा सम्रद्धि हैं। प्रजा तुम्हारे गुणगान करते नहीं थक रही है। फिर भी तुम उदास क्यों हो?'

राजा हाथ जोड़कर बोला - 'महात्मा जी, मेरी परेशानी की वजह मेरा इकलौता पुत्र हैं और फिर राजा ने महात्माजी को यशदेव के विषय में सब बता दिया। महात्मा जी बोले- कल तुम उसको मेरे पास लेकर आना। मैं तुम दोनों की अवश्य सहायता करूँगा। राजमहल पहुँचकर जब राजा ने यशदेव को महात्मा जी के बारे में बताया तो उसने पहले तो कोई उत्सुकता नहीं दिखाई और चुपचाप बैठा रहा, परन्तु जब उसे बताया कि महात्माजी उसे मनचाहा धन देंगे तो वह खुशी के मारे फ़ौरन उछलकर खड़ा हो गया।

अगले दिन वह राजा के साथ महात्माजी से मिलने चल पड़ा। आश्रम में महात्मा जी ने पुछा- 'यशदेव, तुन्हारे जीवन का क्या लक्ष्य है ?'

यशदेव बोला- 'मैं चाहता हूँ कि मेरे चारों

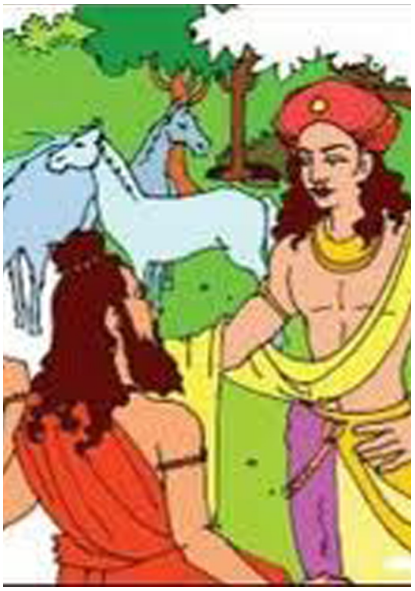

ओर सोना, चांदी तथा अनगिनत बहुमूल्य रत्न हो। निर्धनता से मुझे घृणा है। मेरा राज्य ऐसा हो जिसमे हर व्यक्ति धनी हो।'

महात्मा जी मुस्कुराकर बोले- 'ठीक हैं। मैं तुम्हारी यह अभिलाषा पूरी कर देता हूँ।'

उन्होंने अपनी कुटिया से लाकर दो पोटली यशदेव को पकड़ाते हुए कहा -' इन दोनों पोटलियों को अपने पास रखना। इन दोनों में जादुई बीज है- पीली पोटली के बीजों से उसी समय सोने के पेड़ उगने लगेंगे जिन पर फूल और पत्ते भी सोने के ही होंगे। शाखाओं में विभिन्न प्रकार के रत्न लटकने लगेंगे।'

और हरी पोटली में। उनकी बात खत्म होने से पहले ही राजकुमार मानो खुशी के मारे पागल हो उठा। उसने उन्हें हरी पोटली वापस पकड़ाते हुए कहा 'बस-बस,अब रहने भी दीजिये। हरी पोटली से मुझे कोई सरोकार नहीं है । मुझे केवल पीली पोटली ही चाहिए।'

इस पर महात्मा जी बोले -'नहीं, पूरी बात सुनकर ही तुम्हें पोटली मिलेगी।'

यशदेव अनमने भाव से आगे का सुनने लगा।

महात्माजी बोले - 'हरी पोटली में जो बीज है उन्हें मिट्टी में दबाते ही हरे भरे वृक्ष उगने प्रारंभ हो जायेंगे। पेड़ सुगन्धित फूल तथा स्वादिष्ट फलों से लद जायेंगे पेड़ों के उगते ही उस जगह पर नदी बहने लगेगी, जिसका जल सदैव स्वच्छ , निर्मल तथा पीने योग्य होगा। यशदेव को उनकी बातों में कोई रूचि नहीं थी पर मज़बूरीवश उसे उनकी बाते सुननी पड़ रही थी। महात्माजी उसके मनोभाव को समझते हुए बोले-'अब तुम जा सकते हो।'

यशदेव के तो पीली पोटली पाने के बाद प्रसन्नता के कारण पैर ज़मीन पर ही नहीं पड़ रहे थे। वह सपनों के संसार के साथ ही राजमहल लौट आया। वह राजा से बोला- 'पिताजी, मैं प्रात: काल ही नगर में चारों ओर पीली पोटली के बीज बो देता हूँ, जिससे कल ही हमारा नगर सोने के वृक्षों से जगमगाने लगेगा। राजा उसकी बात अनसुनी करता हुआ बोला- 'तुम इन बीजो को यहाँ नहीं बोओगे।'

यशदेव झुंझलाते हुए बोला- 'यहाँ नहीं बोऊंगा, तो सोने के वृक्ष कहाँ उगेंगे?'

राजा ने उत्तर दिया- 'जहाँ राज्य की सीमा समाप्त होती है, वहाँ कुछ गाँव खाली पड़े है, जो तुम्हारे साथ जाना चाहता हैं, तुम उन्हें लेकर चले जाओ और वहीं जो इच्छा हो करो।'

यशदेव को तो मानो मुहँ मांगी मुराद मिल गई। वह स्वयं ही एक ऐसी जगह जाना चाहता था जहाँ पर कोई रोक टोक नहीं हो। अगले दिन ही प्रजा में मुनादी करवा दी गई। शाम तक करीब पचास लोग उसके साथ जाने के लिए तैयार हो गए। यशदेव की

आँखें अचरज से फ़ैल गई। वह सोच रहा था कि सारा नगर उसके साथ जाने को तैयार जाएगा और तब केवल माँ और पिताजी राजमहल में अकेले रह जायेंगे पर ये तो उल्टा ही हो गया। उसने मन में सोचा – 'किसी ने सच ही कहा हैं बेवकूफ़ो की कमी नहीं हैं। मेरे ही राज्य में इतने हैं और मुझे पता ही नहीं था।'

तभी राजा ने आकर कहा– 'तुम सभी लोगो के भोजन और जल की व्यवस्था कर दी गई है। तुम सारा सामान अपने साथ ले जाना। '

दूसरे दिन राजकुमार दोनों पोटलियाँ लेकर इन लोगो के साथ निकल पड़ा। दो दिन की यात्रा करने के बाद वे लोग राजा के द्वारा बताये गए गाँवों में पहुँच गए। वहाँ पहुँचकर खुशी के मारे राजकुमार ने तुरंत पीली पोटली के बीज निकालकर मिट्टी में दबाना शुरू कर दिए और पल भर में वहाँ अनगिनत हीरे –मोती तथा अनेक बहुमूल्य सोने के जगमगाते वृक्ष उग गए। सभी लोगों की आँखें अचरज के मारे फ़ैल गई। ऐसा अद्भुत नज़ारा ना पहले कभी किसी ने देखा था और ना ही सुना था। वे प्रसन्नता के कारण चीख़ उठे और पागलों की तरह पेड़ों पर चढ़ कर रत्न आदि तोड़ने लगे और राजकुमार की जय जयकार करने लगे। इसी तरह सोने चांदी की दुनिया में उनके पच्चीस दिन व्यतीत हो गए। धीरे–धीरे उन्हें महसूस होने लगा कि उनका साथ लाया हुआ अन्न समाप्त होने लगा हैं तो वे एक दूसरे से झगड़ने लगे। उनमें से जो ताकतवर थे उन्होंने सारा अन्न और जल अपने पास रख लिया। राजकुमार दुबला पतला था, इसलिए उसे भी खाने को कुछ नहीं दिया। भूख से व्याकुल होकर जब वह अन्य लोगों के साथ खाना माँगने पहुंचा तो उसे भी सबके साथ भगा दिया गया। राजकुमार ने कहा– 'जितना धन चाहो मैं तुम्हें दे सकता हूँ , पर मुझे कुछ खाने को दे दो नहीं तो मैं भूख से मर जाऊँगा।'

इस पर एक आदमी बोला– 'मरना तो हम सभी को भूख से ही है, तुम आज मरोगे और हम पांच दिन बाद ...क्योंकि ये अन्न भी अब खत्म होने वाला है।'

राजकुमार सहित सभी लोग निराशा से वापस लौट गए। भूख से व्याकुल होकर लोग चीत्कार कर रहे थे। राजकुमार को भी बिना कुछ खाए पिए दो दिन होने वाले थे. ...रो –रोकर उसकी आँखें सूज गई थी। उससे खड़ा भी नहीं हुआ जा रहा था। वह पथराई आँखों से चारों ओर देख रहा था। चमचमाते रत्न, हीरे और मोती चारों और बिखरे पड़े हुए थे। पर सभी लोग उन्हें कंकड़ पत्थर से भी बेकार समझ रहे थे। आज उसकी समझ में आ रहा था कि लालच आदमी को मौत के मुँह में धकेल देता है। धन जवाहरात किसी की भूख नहीं मिटा सकते। उसे बाहर से लड़ने झगड़ने की आवाज सुनाई पड़ रही थी। लोग हीरे और मोती एक दूसरे पर फ़ेंक कर मार रहे थे। राजकुमार को तभी हरी पोटली का ध्यान आ गया। उसके अन्दर मानों प्राण वापस आ गए। वह अपनी सारी शक्ति लगाकर उठ खड़ा हुआ और हरी पोटली लेकर बाहर आ गया। उसके बाहर निकलते ही लोगो ने उसे मारना शुरू कर दिया। वे बोले– 'आज तुम्हारे ही कारण हमारी ये दशा हैं।'

राजकुमार किसी तरह अपने को छुड़ाते हुए बोला – 'मुझे एक आखिरी मौका दे दो। मैं अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहता हूँ और यह कहकर वो जल्दी जल्दी मिट्टी में बीज दबाने लगा। पलक झपकते ही वहाँ हज़ारों हरे भरे पेड़ उगने लगे। चारों ओर शीतल हवा चलने लगी। अनगिनत खूबसूरत रंग बिरंगे फूल तथा रस भरे फलों से पेड़ लद गए। प्रत्येक व्यक्ति को लग रहा था, जैसे वो स्वर्ग में पहुँच गया हो। लोग पेड़ों पर चढ़ कर फल तोड़ने लगे और नीचे फेंकने लगे। स्वच्छ तथा निर्मल जल से लबालब नदी बहने लगी। चारों ओर काली घटाएँ छा गई और वर्षा होने लगी। राजकुमार सहित सभी लोग प्रकृति के इस अनुपम सौंदर्य को देखकर ठगे से रह गए। सभी लोग राजकुमार की जय जय कार करने लगे। उसने सभी की सहायता से हीरे मोती तथा अन्य रत्न नदी में डाल दिए पर अब सबके चेहरों पर असीम संतुष्टि का भाव था। वे सभी मेहनत करके अपना जीवन सुखपूर्वक गुज़ारने लगे।' ■

गज़ल

तमन्नाएं मुझे अक्सर ही बहकाती रही
जिन्दगी रोती कभी मुस्कुराती रही।

किनारे हँस रहे मुझे देख कर मजधार में
लहरें पास आकर दूर खो जाती रही।

कर रहा हूँ प्रायश्चित्त जिन्दगी के गुनाह के
हमने जीया जो उधार मे वह उम्र भी जाती रही।

उसने तपती रेत को मेरा मुकद्दर कह दिया
एक तिनका छांव भी कल शाम समझाती रही।

आग तो भुखी रही समन्दर भी प्यासा सो गया
भविष्य की बरसात गीली रोटियाँ गढ्ती रही।

– उमाशंकर चौबे

पृष्ठ 3 का शेष...

आंखों देखा रूहानी फरिश्ता

जो कार्य दिया उसे हां जी के साथ जैसे अन्य करते थे, वैसे ही पूरी योग्यता और समर्पण के साथ किया। यह सब करते हुए उन्होंने अपने निर्मान चित्त और समर्पण भाव को इस खूबी के साथ व्यक्त किया कि वे सबकी प्यारी और आदर की पात्र बनती चली गईं।

1996 से अपने खराब स्वास्थ्य के कारण वे आबू में मुख्यालय पर रहते हुए ही सेवायें करती रहीं। अपनी बीमारी की लम्बी अवधि में भी उन्हें जो भी देखता था तो उनके चेहरे की दिव्य आभा और रूहानी मुस्कान से उसे वे कभी भी बीमार नहीं लगती थी। हंसकर, कोमल और प्यारी मीठी आवाज से वे आने वाले का स्वागत करती, हालचाल पूछती और उसे टोली-प्रसाद देती। जो देखने आता था वह अपने को दिखाकर जाता था तो उसे यह समझ ही नहीं आता था कि वह बीमार को देखने आया था या शक्ति स्वरूपा देवी को नमन करने आया था। ऐसा एक का नहीं अनेकों का अनुभव है।

बी के निर्वैर इस संगठन में सबसे वरिष्ठ हैं। वे बताते हैं कि परदादी दिखावे के लिए सेवा नहीं करती थी, दिल से करती थी। बिजली, पानी अनाज कुछ भी व्यर्थ व्यय न हो, यह सदा ध्यान रखती थी। तीनों समय एक छोटी सी रोटी खाती थीं। यदि बड़ी बन जाये तो कहती थी-लोभी लाला आज बड़ी रोटी बना दी। ले तू खा। सब कुछ नपा-तुला। बीके रमेश शाह अपने कानूनी और एकाउन्टस की बारीकी के लिए ख्यात हैं।

उन्होंने बताया कि दादी एकानामी और एकनामी की उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनको देखकर ही लगता है कि देवी-देवताओं का चलन और व्यवहार कैसा होता है। प्यूरिटी के सम्पादक बी के बृजमोहन का अनुभव है कि उनके पास जाते ही चुम्बक जैसी कशिश का अनुभव सभी को होता रहा है। उनके प्रवचन तो रसभरे गिलास की तरह होते थे।

नवरंगपुर, उड़ीसा की नीलम बहन उनके सम्पर्क में लम्बे समय से रही हैं। वे कहती हैं - बाबा जैसी पालना देते हुए उन्होंने हमें सब कुछ सिखाया है। अस्वस्थ अवस्था में भी फूल जैसे खिले हुए चेहरे से शिव बाबा की स्मृति दिलाते हुए सच्चे वात्सल्य से हमसे बात करती थीं। जयपुर के मदनलाल शर्मा उनके सानिध्य में पचास साल रहे हैं। वे कहते हैं- मैं जो हूं उनकी वजह से ही हूं। उनसे ही उमंग उत्साह भरा जीवन पाया है। वे सदा ही दूसरों को आगे बढ़ाती आई हैं। सदा खुशहाल रहना उनसे ही सीखा है। रूकमणी बहन को उनके साथ रहते हुए लगभग पचास साल हो गये हैं। उनकी सहायक रही हैं। वे कहती हैं कि एक बार बापदादा ने उनसे पूछा था कि तीन बाप की बेटी होने का बहुत नशा है। दादी का उत्तर था- तीन नहीं चार। बापदादा ने पूछा- कैसे। दादी ने कहा कि लौकिक, अलौकिक, पारलौकिक के साथ ही लक्ष्मी नारायण की भी बेटी मैं ही बनूंगी। बापदादा ने कहा- बच्ची एक पगड़ी और चढ़ गई। ऐसे ही किसी ने मुझसे पूछा था कि आपने फरिश्ता देखा है। मैंने कहा- देखा है। किताब या सपने में नहीं। जमीन पर और यहीं। निर्मलशांता के रूप में। और जिसने भी उन्हें देखा है, वे यह मान लेंगे कि यह सच है।

पृष्ठ 4 का शेष...

कमाने, संबंध निभाने आदि को ही झंझट मानकर वे संगठन, आश्रम आदि पर अपने को जीवन को चलते रहने का पर्याय मानते हैं। वे उसपर अपने जीवन के लिए निर्भर होते हैं। वे वहां होते ही इसीलिए हैं। साधना या सेवा तब उनके लिए वहां रहने और बने रहने का पर्याय ही है।

कुछ ही ऐसे होते हैं जो अपने स्वरूप, परमात्मा की पहचान को जानकर और समझकर आते हैं। वे मानते हैं कि संसार और शरीर की वासनाओं के लिए किये जाने वाले कर्म कर्तव्य कर्म नहीं हैं। मन उनमें भोग के लिए आसक्त होता है। वे साधना और संगठन से जुड़ते ही इसलिए हैं कि जिससे संसार उन्हें अपने भोग्य कर्मों के लिए बाधा न बने। वे साधना के लिए समर्पित होते हैं। उनसे संसार निश्चय ही छूटता है। संसार और उसके व्यक्त संबंध उसके विरोधी होते ही हैं। वे संसार से भागते तो नहीं हैं, न संबंधों से भागते हैं फिर भी वह सब छूटता जाता है। आप दादा लेखराज, विवेकानंद, अरविंद, रामकृष्ण आदि सभी की जीवनियों का अनुशीलन करेंगे तो यही पायेंगे। वे संसार में होते हुए भी संसार में नहीं होते हैं और न संसार के साधन करते हैं।

एक अधिकारी ने अपना तबादला और अपनी जांच को अध्यात्म में रहते हुए आसानी से रूकवाया। उतनी आसानी से वे बाहर रहते हुए नहीं रूकवा सकते थे। व्यवसाय से जुड़े एक व्यक्ति को यहां आकर अच्छा बाजार भी मिला और सहयोग भी मिला। एक व्यक्ति ने तो बताया कि पेट भर खाना और तन भर कपड़ा ही तो चाहिये। यहां वह सब है। क्यों दुनियादारी में फंसा जाये। आपको लगता है कि यह परमात्मा को पाने या उसकी प्रतीती की तरफ चलने वाले हैं। यही सबसे तो लगता है कि संसार का परिवर्तन हमारी कामनाओं के अनुरूप ही हो रहा है। कहने को हम कुछ भी कहते रहें।